विषय-सूची

दो शब्द

साधकों के लिए 'विपश्यना' नाम के मासिक प्रेरणापत्र का प्रकाशन सन १९७१ से हो रहा है। तभी से इसके हर अंक में बुद्ध-वाणी का कोई-न-कोई संदर्भ भी भाषानुवाद सहित उद्धृत किया जा रहा है।

इन संदर्भों का चयन विपश्यनाचार्य श्री गोयन्काजी स्वयं करते हैं। ये सभी संदर्भ साधकों के लिए बड़े प्रेरणादायी होते हैं और इनमें से बहुतों की व्याख्या भी वे साधना-शिविरों के दौरान करते हैं। साधकों के लिए इन संदर्भों का स्थायी महत्त्व होने से अब इन्हें पुस्तकाकार में प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया है।

प्रकाशन से पूर्व इन संदर्भों का विषयवार वर्गीकरण कर इन्हें उपयुक्त शीर्षकों एवं उप-शीर्षकों के तले रखा गया है।

हमारी मंगल कामना है कि इस सत्प्रयास से सभी साधक खूब खूब लाभान्वित हों।

निदेशक,

विपश्यना विशोधन विन्यास

ध म्म वा णी - सं ग्र ह

(१) शील

शील की महिमा

सीलं बलं अप्पटिमं, सीलं आयुधमुत्तमं।
सीलमाभरणं सेट्ठं, सीलं कवचमब्भुतं॥

(अनुपम-) अप्रतिम है शील का बल (-वैभव)। उत्तम है शील का आयुध (-अस्त्र)। श्रेष्ठ है शील का आभरण (-आभूषण)। अद्भुत है शील का कवच (-बख्तर)।

सीलगन्धसमो गन्धो, कुतो नाम भविस्सति।
यो समं अनुवाते च, पटिवाते च वायति॥

शील-गंध के समान अन्य गंध कहां होगी - जो जैसे हवा के रुख की ओर, वैसे ही उल्टी ओर भी बहती हो।

सोभन्तेव न राजानो, मुत्तामणि विभूसिता।
यथा सोभन्ति यतिनो, सीलभूसनभूसिता॥

मुक्ता-मणियों से सुसज्जित राजा भी ऐसे शोभायमान नहीं होते जैसे कि शील के आभूषण से सुसज्जित यति शोभायमान होते हैं।

वेला च संवरं सीलं, चित्तस्स अभिहासनं।
तित्थञ्च सब्बबुद्धानं, तस्मा सीलं विसोधये॥

संयम शील का प्रमाण है, शील चित्त को आनंदित करता है और सभी बुद्धों का तीर्थ (संप्रदाय) है, इसलिए शील को विशुद्ध करे।

शील की सुरक्षा

किकीवअण्डं चमरीव बालधिं, पियञ्च पुत्तं नयनं व एककं।
तथेव सीलं अनुरक्खमानका, सुपेसला होथ सदा सगारवा॥

जिस प्रकार टिटिहरी अपने अंडे की, चमरी गाय अपनी पूंछ की, माता अपने इकलौते पूत की, काना व्यक्ति अपनी अकेली आंख की (सावधानीपूर्वक सुरक्षा करता है), उसी प्रकार शील की भलीभांति सुरक्षा करे और उसी के प्रति सदाचरणयुक्त हो उसका गौरव करे।

शील का अतिक्रमण

पाणातिपातो अदिन्नादानं, मुसावादो च वुच्चति।
परदारगमनञ्चेव, नप्पसंसन्ति पण्डिता॥

यह जो प्राणी-हिंसा, चोरी, झूठ और परस्त्रीगमन कहलाता है; समझदार लोग उसकी प्रशंसा नहीं करते।

इत्थिमिस्से कुतो सीलं, मंसभक्खे कुतो दया।
मुसमाने कुतो सच्चं, महालोभे कुतो हिरी।
महातन्दे कुतो सिप्पं, महाकोधे कुतो धनं॥

स्त्रीसंसर्ग में निरत रहने वाले में शील कहां? मांसभक्षण करने वाले में दया कहां? झूठ बोलने वाले में सच कहां? महातंद्रिल आलसी के पास शिल्प कहां? महाक्रोधी के पास धन कहां?

(२) चित्त

चित्त की सुरक्षा

चित्तं, भिक्खवे, रक्खितं महतो अत्थाय संवत्तति।

भिक्षुओ, सुरक्षित किया हुआ चित्त महान अर्थकारी है (महालाभकारी है)।

मनोपकोपो रक्खेय्य, मनसा संवुतो सिया।
मनोदुच्चरितं हित्वा, मनसा सुचरितं चरे॥

मानसिक आवेश (उन्माद) से अपने को बचाये, मन से संयत रहे (उसे संयमित रखे)। मानसिक दुराचार को त्याग कर मानसिक सदाचरण करे।

अनभिज्झालु विहरेय्य, अब्यापन्नेन चेतसा।
सतो एकग्गचित्तस्स, अज्झत्तं सुसमाहितो॥

लोभरहित (चित्त से) विहार करे, क्रोधरहित चित्त से विहार करे, स्मृतिमान और एकाग्र चित्त वाले का अंदर सुसमाहित होता है।

चित्तं मम अस्सवं विमुत्तं, दीघरत्तं परिभावितं सुदन्तं।
पापं पन मे न विज्जति, अथ चे पत्थयसी पवस्स देव॥

मेरा मन आज्ञाकारी है, विमुक्त है। दीर्घकाल से मैंने इसे सुशिक्षित कर रखा है, सुदंत बना (वश में कर) रखा है। मुझमें (जरा भी) पाप नहीं बचा है। हे देव! अब चाहो तो जी भर कर बरस लो!

सुदुद्दसं सुनिपुणं, यत्थकामनिपातिनं।
चित्तं रक्खेथ मेधावी, चित्तं गुत्तं सुखावहं॥

जिसे समझना बड़ा मुश्किल है, जो बड़ा चालाक है, जहां चाहे वहीं जा पहुँचता है, समझदार (व्यक्ति) को चाहिए कि (ऐसे) चित्त की सुरक्षा करे। सुरक्षित चित्त बड़ा सुखदायी होता है।

अतीतानुधावनं चित्तं, विक्खेपानुपतितं - समाधिस्स परिपन्थो।
अनागतपटिकङ्खनं चित्तं, विकम्पितं - समाधिस्स परिपन्थो॥

अतीत की ओर दौड़ने वाला विक्षिप्त चित्त समाधि के लिए खतरा, बाधा, मार्ग-अवरोधक है। भविष्य की आकांक्षा से प्रकंपित हुआ चित्त समाधि के लिए खतरा है, मार्ग-अवरोधक है।

इदं पुरे चित्तमचारि चारिकं, येनिच्छकं यत्थकामं यथासुखं।
तदज्जहं निग्गहेस्सामि योनिसो, हत्थिप्पभिन्नं विय अङ्कुसग्गहो॥

यह जो जहां इच्छा होती, जहां कामना होती, जहां सुख दिखता, वहां पहले जाने वाला चित्त है, उसे विचारपूर्वक वैसे ही भलीभांति वश में करूंगा जैसे कि अंकुशधारी महावत बिगड़ैल हाथी को वश में करता है।

मन मैला और तन को धोये

किं ते जटाहि दुम्मेध, किं ते अजिनसाटिया।
अब्भन्तरं ते गहनं, बाहिरं परिमज्जसि॥

अरे दुष्प्रज्ञ! जटाओं से तेरा क्या बनेगा? मृगचर्म धारण करने से तेरा क्या लाभ होगा? भीतर तो तेरा चित्त गहन मलीनता से भरा पड़ा है। बाहर-बाहर से तू इस शरीर को क्या रगड़ता-धोता है?

न नग्गचरिया न जटा न पङ्का, नानासका थण्डिलसायिका वा,
रजोजल्लं उक्कुटिकप्पधानं, सोधेन्ति मच्चं अवितिण्णकङ्खं॥

जिस मनुष्य की आकांक्षाएं समाप्त नहीं हुई हैं उसकी शुद्धि न नंगे रहने से, न जटा (धारण करने) से, न कीचड़ (लपेटने) से, न उपवास करने से, न कड़ी भूमि पर सोने से, न कादा पोतने से और न उकड़ू बैठने से ही होती है।

चित्त सधे सब सधे

अनवट्ठितचित्तस्स, सद्धम्मं अविजानतो।
परिप्लवपसादस्स, पञ्ञा न परिपूरति॥

जिसका चित्त अस्थिर है, जो सद्धर्म को नहीं जानता, जिसकी श्रद्धा दोलायमान (डांवांडोल) है, उसकी प्रज्ञा परिपूर्ण नहीं हो सकती।

मन जीते जग जीत

यो सहस्सं सहस्सेन, सङ्गामे मानुसे जिने।
एकञ्च जेय्यमत्तानं, स वे सङ्गामजुत्तमो॥

हजार संग्रामों में हजारों मनुष्यों को जीतने वाले से भी एक अपने आप को जीतने वाला कहीं उत्तम संग्राम-विजेता होता है।

सेलो यथा एकघनो, वातेन न समीरति।
एवं निन्दापसंसासु, न समिञ्जन्ति पण्डिता॥

जैसे सघन शैल-पर्वत वायु से प्रकंपित नहीं होता, वैसे ही समझदार लोग निंदा और प्रशंसा (वस्तुतः आठों लोकधर्मों) से विचलित नहीं होते।

अत्ता हि अत्तनो नाथो, को हि नाथो परो सिया।
अत्तना हि सुदन्तेन, नाथं लभति दुल्लभं॥

व्यक्ति स्वयं ही अपना स्वामी है, भला कोई दूसरा उसका स्वामी कैसे हो सकता है? अपने आप को भली-भांति वश में करके ही व्यक्ति दुर्लभ स्वामित्व प्राप्त कर सकता है।

अत्ता हि अत्तनो नाथो, अत्ता हि अत्तनो गति।
तस्मा संयममत्तानं, अस्सं भद्रंव वाणिजो॥

व्यक्ति स्वयं ही अपना स्वामी है, स्वयं ही अपनी गति (शरण) है। इसलिए अपने आप को संयत करे, वैसे ही जैसे कि अच्छे घोड़ों का व्यापारी अपने घोड़ों को (करता) है।

मन का मैल उतार

अनुपुब्बेन मेधावी, थोकं थोकं खणे खणे।
कम्मारो रजतस्सेव, निद्धमे मलमत्तनो॥

समझदार व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने मैल को क्रमशः थोड़ा-थोड़ा क्षण-प्रतिक्षण वैसे ही दूर करे जैसे कि रजतकार (सुनार) चांदी के मैल को दूर करता है।

बाहितपापोति ब्राह्मणो, समचरिया समणोति वुच्चति।
पब्बाजयमत्तनो मलं, तस्मा "पब्बजितो" ति वुच्चति॥

ब्राह्मण वह (कहलाता) है जिसने पापों को बहा दिया, श्रमण वह (कहलाता) है जिसकी चर्या समतापूर्ण है और प्रव्रजित वह कहलाता है जिसने अपने चित्त के मैल दूर कर लिये।

(३) सुख - दुःख

सुख या दुःख?

यं परे सुखतो आहु, तदरिया आहु दुक्खतो।
यं परे दुक्खतो आहु, तदरिया सुखतो विदू॥

दूसरों ने जिसे सुख कहा है, आर्यों (संतों) ने उसे दुःख कहा है। जिसे दूसरों ने दुःख कहा है उसे आर्यों (संतों ने) सुख जाना है।

सरलता में ही सुख है

करणीयमत्थकुसलेन, यं तं सन्तं पदं अभिसमेच्च।
सक्को उजू च सुहुजू च, सुवचो चस्स मुदु
अनतिमानी॥

जिसे सचमुच अपना अर्थ सिद्ध करना है (अपना कल्याण साधना है), परम शांति-पद (निर्वाण) प्राप्त करना है, उसे चाहिए कि वह इस योग्य बने! वह सरल बने. अति सरल बने, सुभाषी बने, मृदु (-स्वभाव) बने, निरभिमानी बने।

संतोष ही सच्चा सुख

दुक्खी सुखं पत्थयति, सुखी भिय्योपि इच्छति।
उपेक्खा पन सन्तत्ता, सुखमिच्चेव भासिता॥

(वर्तमान स्थिति से व्याकुल होकर) दुःखी मनुष्य सुख के लिए प्रार्थना करता है। (वर्तमान सुख से असंतुष्ट होकर) सुखी मनुष्य अधिक सुख की कामना करता है। संतप्त व्यक्ति यदि उपेक्षाभाव रखे तो वही सुख कहा गया है।

भोगे सुख न होय

आनण्यसुखं ञत्वान, अथो अत्थिसुखं परं।
भुञ्जं भोगसुखं मच्चो, ततो पञ्ञा विपस्सति॥

विपस्समानो जानाति, उभो भागे सुमेधसो।
अनवज्जसुखस्सेतं, कलं नाग्घति सोळसिं॥

विपश्यी साधक उऋणसुख को, संपदा के अस्तित्व के सुख को और संपदा के भोगसुख को तथा उनके अनित्य स्वभाव को विपश्यना साधना द्वारा प्रज्ञा से जान लेता है। फिर शीलसंपन्न होने के सुख को भी विपश्यना द्वारा जान कर यह भलीभांति समझ लेता है कि इन दोनों में क्या अंतर है। याने उऋणसुख, संपदासुख, भोगसुख तीनों मिल कर अनवद्य (=निर्दोष) शीलसुख की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं हैं।

(४) शत्रु - मित्र - सेवाभाव

राग : द्वेष : मोह - असली शत्रु

नत्थि रागसमो अग्गि, नत्थि दोससमो गहो।
नत्थि मोहसमं जालं, नत्थि तण्हासमा नदी॥

राग के समान अग्नि नहीं है, न द्वेष के समान जकड़न। मोह के समान फंदा नहीं है, न तृष्णा के समान नदी।

छन्दा दोसा भया मोहा, यो धम्मं अतिवत्तति।
निहीयति यसो तस्स, काळपक्खेव चन्दिमा॥

जो व्यक्ति राग, द्वेष, भय और मोह से धर्म का अतिक्रमण करता है, उसका यश कृष्ण पक्ष के चंद्रमा की भांति क्षीण होता है।

स्वार्थी मित्र

अञ्ञदत्थुहरो होति, अप्पेन बहुमिच्छति।
भयस्स किच्चं करोति, सेवति अत्थकारणा॥

पराये धन का अपहरण करनेवाला, थोड़ा देकर बहुत पाने की इच्छा रखने वाला, ऐसा काम करनेवाला जो भय पैदा करे और स्वार्थ के लिये ही साथ देने वाला मित्र नहीं, अमित्र होता है।

सेवा का फल

अभिवादनसीलिस्स, निच्चं वुद्धापचायिनो।
चत्तारो धम्मा वड्ढन्ति, आयु वण्णो सुखं बलं॥

जो अभिवादनशील है, जो सदा वृद्धों की सेवा करनेवाला है, उसकी चार बातें बढ़ती हैं - आयु, वर्ण, सुख और बल।

वैर बढ़ाये वैर, अवैर बढ़ाये प्रीत

न हि वेरेन वेरानि, सम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति, एस धम्मो सनन्तनो॥

यहां (इस लोक में) कभीभी वैर से वैर शांत नहीं होते, बल्कि अवैर से ही शांत होते हैं। यही सनातन धर्म है।

जागे मैत्रीभाव

यस्स सब्बमहोरत्तं, अहिंसाय रतो मनो।
मेत्तंसो सब्बभूतेसु, वेरं तस्स न केनची'ति॥

जिसका मन सब के प्रति रात-दिन अहिंसा में रत रहता है, जो सभी प्राणियों के प्रति मैत्रीभाव रखता है, उसका किसी के साथ वैर नहीं रह जाता।

मेत्तञ्च सब्बलोकस्मिं, मानसं भावये अपरिमाणं।
उद्धं अधो च तिरियञ्च, असम्बाधं अवेरमसपत्तं॥

बिना बाधा के, बिना वैर के और बिना विरोध के ऊपर-नीचे, आड़े-तिरछे, सभी दिशाओं में समस्त लोक के प्रति अपने मन में असीम मैत्रीभाव जगाये।

(५) सत्य-दर्शन

संदृष्टि से दुःख-निरोध

चतुन्नं अरियसच्चानं, यथाभूतं अदस्सना।
संसितं दीघमद्धानं, तासु तास्वेव जातिसु॥

तानि एतानि दिट्ठानि, भवनेत्ति समूहता।
उच्छिन्नं मूलं दुक्खस्स, नत्थिदानि पुनब्भवोति॥

चारों आर्य सत्यों को यथाभूत न देख सकने के कारण ही लंबे समय तक उन-उन योनियों में आवागमन होता रहा। अब तो ये चारों आर्य सत्य देख लिए गये हैं। फलस्वरूप भवनेत्री भवतृष्णा नष्ट हो गयी है। दुःख की जड़ उखड़ गयी है, अब पुनर्जन्म नहीं होगा।

यदा हवे पातुभवन्ति धम्मा, आतापिनो झायतो ब्राह्मणस्स।
अथस्स कङ्खा वपयन्ति सब्बा, यतो पजानाति सहेतुधम्मं॥

अथस्स कङ्खा वपयन्ति सब्बा, यतो खयं पच्चयानं अवेदी।
विधूपयं तिट्ठति मारसेनं, सुरियोव ओभासयमन्तलिक्खं॥

जब किसी ब्राह्मण-तापस को ध्यान करते हुए (बोधिपक्षीय) धर्म प्रकट होते हैं तब उसकी सारी शंकाएं दूर हो जाती हैं, क्योंकि वह सभी उत्पन्न होने वाली स्थितियों का कारण जान लेता है। उसकी सारी शंकाएं दूर हो जाती हैं, क्योंकि वह उन कारणों का नष्ट होना भी जान लेता है। (और इस प्रकार कारणों को नष्ट करके)(प्रबल) मार सेना को पराजित करता हुआ (पूर्ण विमुक्त अवस्था में) वैसे ही प्रतिष्ठित हो जाता है जैसे कि समस्त अंधकार को परास्त करके सूर्य अंतरिक्ष में प्रतिष्ठित होता है।

यथिन्दखीलो पठविं सितो सिया, चतुब्भि वातेहि असम्पकम्पियो।
तथूपमं सप्पुरिसं वदामि, यो अरियसच्चानि अवेच्च पस्सति॥

जिस प्रकार धरती में (गहराइयों तक) गड़ा हुआ इंद्रकील (नगरद्वार-स्तंभ) चारों ओर की तेज हवाओं से कंपायमान नहीं होता, मैं कहता हूं कि उसी प्रकार वह सत्पुरुष (भी) अविचल बना रहता है जो चारों आर्यसत्यों का गहराइयों से साक्षात्कार कर लेता है।

सबको जाने निज समान

सब्बे तसन्ति दण्डस्स, सब्बेसं जीवितं पियं।
अत्तानं उपमं कत्वा, न हनेय्य न घातये॥

सभी दंड से डरते हैं। जीवित रहना सबको प्रिय लगता है। (अतः) (सभी को) अपने जैसा समझ कर न हत्या करे, न हत्या करने के लिए प्रेरित करे।

सम्यक दर्शन

यतं चरे यतं तिट्ठे, यतं अच्छे यतं सये।
यतं समिञ्जये भिक्खु, यतमेनं पसारये॥

उद्धं तिरियं अपाचीनं, यावता जगतो गति।
समवेक्खिता च धम्मानं, खन्धानं उदयब्बयं॥

संयत होकर चले, संयत होकर खड़ा हो, संयत होकर बैठे, संयत होकर लेटे। भिक्षु संयत होकर ही सिकोड़े, संयत होकर पसारे। ऊपर-नीचे, आड़े-तिरछे जहां तक लोक गति है, वहां तक धर्मों और पांच स्कंधों (नाम और रूप) के उदय-व्यय का सम्यक दर्शन करे।

सम्यक संबुद्ध

जातिधम्मो जराधम्मो, ब्याधिधम्मो सहं तदा।
अजरं अमतं खेमं, परियेसिस्सामि निब्बुतिं॥

यह जो जातिधर्मा, जराधर्मा और व्याधिधर्मा है, उसे जीत कर जो अजर, अमर और क्षेमपूर्ण है, मैं उसकी खोज में लगूंगा।

इमिना मे अधिकारेन, कतेन पुरिसुत्तमे।
सब्बञ्ञुतं पापुणित्वा, सन्तारेस्सं सदेवकं॥

इन पुरुषोत्तम सम्यक संबुद्ध द्वारा इस प्रकार अधिकारी व्यक्ति घोषित किये जाने पर, मैं सर्वज्ञता प्राप्त कर देव-मनुष्यों के तारने में सहायक बन जाऊं।

महाकारुणिको नाथो, हिताय सब्ब पाणिनं।
पूरेत्वा पारमी सब्बा, पत्तो सम्बोधिमुत्तमं॥

महाकारुणिक भगवान ने सब प्राणियों के हित-सुख के लिये समस्त पारमिताओं को परिपूर्ण कर उत्तम संबोधि प्राप्त की।

निर्विवाद सत्य

एकञ्हि सच्चं न दुतीयमत्थि, यस्मिं पजा नो विवदे पजानं।
नाना ते सच्चानि सयं थुनन्ति, तस्मा न एकं समणा वदन्ति॥

सत्य तो एक ही है, दूसरा है ही नहीं, जिसके बारे में लोग सचमुच परस्पर विवाद करें। परंतु ये नाना मत वाले श्रमण अपनी ओर से नाना सत्यों की घोषणा करते हैं इसलिए ये सब एक ही बात नहीं बोलते।

यथापि कुम्भकारस्स, कता मत्तिकभाजना।
सब्बे भेदनपरियन्ता, एवं मच्चान जीवितं॥

जैसे कुम्हार के बनाये हुए सभी मिट्टी के भांडे टूट जाने वाले हैं, वैसे ही मर्त्यों (मरणशील प्राणियों) का जीवन है।

(६) तृष्णा

मोहं, भिक्खवे, एक धम्मं पजहथ, अहं वो पाटिभोगो अनागामिताया।

भिक्षुओ! (केवल) एक मोह का त्याग कर दो। तो मैं तुम्हारे अनागामी (मुक्त) होने का जामिन होता हूं।

खीणं पुराणं नवं नत्थि सम्भवं, विरत्तचित्तायतिके भवस्मिं।
ते खीणबीजा अविरुळ्हिछन्दा, निब्बन्ति धीरा यथायं पदीपो॥

जिनके (सारे) पुराने कर्म क्षीण हो गये हैं और नये कर्मों की उत्पत्ति होती नहीं, पुनर्जन्म के प्रति जिनका चित्त पूर्णतया विरक्त हो गया हो, वे क्षीण-बीज, तृष्णा-विमुक्त धीर (पुरुष) वैसे ही निर्वाण को प्राप्त होते हैं जैसे (कि तेल और बाती समाप्त होने पर) यह प्रदीप।

तृष्णाओं से विरक्ति, बंधनों से मुक्ति

सुखं वा यदि वा दुक्खं, अदुक्खमसुखं सह।
अज्झत्तं च बहिद्धा च, यं किञ्चि अत्थि वेदितं॥

एतं दुक्खन्ति ञत्वान, मोसधम्मं पलोकिनं।
फुस्स फुस्स वयं पस्सं, एवं तत्थ विजानति।
वेदनानं खया भिक्खु, निच्छातो परिनिब्बुतो॥

बाहर और भीतर जो भी संवेदनाएं महसूस होती हैं वे चाहे सुखद हों या दुःखद अथवा अदुःखद-असुखद, साधक उनकी मिथ्या भ्रांति को नष्ट करता है और अनुभव करता है कि वस्तुतः उनमें दुःख ही समाया हुआ है। जहां स्पर्श होता है और स्पर्शजन्य संवेदना होती है, वहां उसके अनित्य स्वभाव को अनुभव कर उससे विरक्त होता है और इस प्रकार अभ्यास करता हुआ साधक उस स्थिति में पहुँच जाता है जहां कि वह समस्त संवेदनाओं का क्षय और तृष्णा का उन्मूलन कर परम उपशांत हो जाता है; परिनिर्वाण प्राप्त कर लेता है।

छन्दजं अघं छन्दजं दुक्खं।
छन्दविनया अघविनयो।
अघविनया दुक्खविनयो॥

छंद (याने, तृष्णा) से पाप उत्पन्न होता है, तृष्णा से ही दुःख जन्मता है। तृष्णा नष्ट कर दी जाय, तो पाप नष्ट हो जाता है। पाप नष्ट कर दिया जाय, तो दुःख नष्ट हो जाता है।

कामतो जायती सोको, कामतो जायती भयं।
कामतो विप्पमुत्तस्स, नत्थि सोको कुतो भयं॥

काम से शोक उत्पन्न होता है। काम से भय उत्पन्न होता है। काम से विमुक्त (व्यक्ति) को शोक नहीं होता। फिर भय कहां से (होगा)?

नन्दीसम्बन्धनो लोको, वितक्कस्स विचारणं।
तण्हाय विप्पहानेन, सब्बं छिन्दति बन्धनं॥

लोकीय क्षेत्र में आनंदरस लेना, उससे संबंधित वितर्क में विचरण करना बंधन है। (इस) तृष्णा के प्रहाण से सारे बंधन कट जाते हैं।

तृष्णा का विषैला डंक

यं एसा सहते जम्मी, तण्हा लोके विसत्तिका।
सोका तस्स पवड्ढन्ति, अभिवड्ढंव बीरणं॥

लोक में यह विषमयी तृष्णा जिस किसी को अभिभूत कर लेती है, उसके शोक वैसे ही बढ़ने लगते हैं जैसे कि वर्षा ऋतु में 'वीरण' नाम की जंगली घास (बढ़ती रहती है)।

इदं खो पन, भिक्खवे, दुक्खसमुदयं अरियसच्चं, यायं तण्हा पोनोब्भविका नन्दीरागसहगता तत्रतत्राभिनन्दिनी। सेय्यथिदं - कामतण्हा, भवतण्हा, विभवतण्हा।

भिक्षुओ, यह है दुःख-समुदय आर्यसत्य। यह जो तृष्णा है बार-बार उत्पन्न होने के स्वभाव वाली, रागरंजन और आनंदन से संयुक्त रहने वाली,

कभी यहां का, कभी वहां का रस चख-चख कर अभिनंदन करती रहने वाली। कौन सी है यह तृष्णा? यह है काम-तृष्णा, भव-तृष्णा और विभव-तृष्णा।

मनुजस्स पमत्तचारिनो, तण्हा वड्ढति मालुवा विय।
सो प्लवती हुरा हुरं, फलमिच्छंव वनस्मिं वानरो॥

प्रमत्त होकर आचरण करने वाले मनुष्य की तृष्णा मालुवा लता की भांति बढ़ती है, वन में फलकी इच्छा से एक डाल छोड़ दूसरी डाल पकड़ते बंदर की तरह वह एक भव से दूसरे भव में भटकता रहता है।

तृष्णा - दुःख का मूल

जातिपि दुक्खा, जरापि दुक्खा, ब्याधिपि दुक्खो, मरणम्पि दुक्खं, अप्पियेहि सम्पयोगो दुक्खो, पियेहि विप्पयोगो दुक्खो, यम्पिच्छं न लभति तम्पि दुक्खं - सङ्खित्तेन पञ्चुपादानक्खन्धा दुक्खा।

जन्म भी दुःख है, बुढ़ापा भी दुःख है, रोग भी दुःख है, मरण भी दुःख है। अप्रिय (व्यक्तियों, वस्तुओं, स्थितियों) का संयोग दुःख है, प्रिय (व्यक्तियों, वस्तुओं, स्थितियों) का वियोग दुःख है, मनचाहे का न पाना भी दुःख है; संक्षेप में कहें तो उपादान (याने, आसक्ति) पर आधारित पंच-स्कंधों की यह जीवनधारा ही दुःख है।

तृष्णाविहीन का जीवन

सुसुखं वत जीवाम, आतुरेसु अनातुरा।
आतुरेसु मनुस्सेसु, विहराम अनातुरा॥

(तृष्णा से) आतुर(-व्याकुल) लोगों के बीच, अहो! हम अनातुर(-अनाकुल) रह कर बड़े सुख से जी रहे हैं। आतुर मनुष्यों में हम अनातुर रह कर विचरण करते हैं।

(७) अहंकार कायासक्ति

‘मेरा’, ‘मेरा’ क्या करे

पुत्ता मत्थि धनमत्थि, इति बालो विहञ्ञति।
अत्ता हि अत्तनो नत्थि, कुतो पुत्ता कुतो धनं॥

“मेरे पुत्र!”“मेरा धन!” - इस (मिथ्या चिंतन) में ही मूढ़ व्यक्ति तड़पता रहता है। अरे, जब यह (तन और मन का) अपनापा ही अपना नहीं है, तो कहां “मेरे पुत्र”? कहां “मेरा धन”?

रूप का स्वरूप जानो

किञ्च, भिक्खवे, रूपं वदेथ? रुप्पतीति खो, भिक्खवे, तस्मा ‘रूप’न्ति वुच्चति। केन रुप्पति? सीतेनपि रुप्पति, उण्हेनपि रुप्पति, जिघच्छायपि रुप्पति, पिपासायपि रुप्पति, डंसमकसवातातपसरीसप- सम्फस्सेनपि रुप्पति। रुप्पतीति खो, भिक्खवे, तस्मा ‘रूप’न्ति वुच्चति।

भिक्षुओ, “रूप” क्यों कहा जाता है? क्योंकि यह (रुप्पति) विकृत होता है, इसीलिए रूप कहा जाता है। किससे विकृत होता है? शीत से विकृत होता है, उष्ण से विकृत होता है, भूख से विकृत होता है, प्यास से विकृत होता है, डंस, मच्छर, हवा, धूप तथा कीड़ों-सांपों के स्पर्श से विकृत होता है। भिक्षुओ! क्योंकि यह विकृत होता है इसी से “रूप” कहलाता है।

गंदगी का ढेर

अल्लचम्मपटिच्छन्नो, नवद्वारो महावणो।
समन्ततो पग्घरति, असुचिपूतिगन्धियो॥

गीली चमड़ी से ढका हुआ, नौ द्वारों वाला, महाव्रण-सदृश यह शरीर सभी ओर से सड़ी-गली दुर्गंधमयी गंदगी बहा रहा है।

हड्डियों का नगर

अट्ठीनं नगरं कतं, मंसलोहितलेपनं।
यत्थ जरा च मच्चु च, मानो मक्खो च ओहितो॥

यह हड्डियों का नगर बना है जो मांस और रक्त से लेपा गया है; जिसमें जरा, मृत्यु, अभिमान और म्रक्ष (डाह) छिपे हुए हैं।

रोगों की वृद्धि

तयो रोगा पुरे आसुं, इच्छा अनसनं जरा।
पसूनं च समारम्भा, अट्ठानवुतिमागमुं॥

पहले केवल तीन रोग थे - इच्छा, भूख और बुढ़ापा। पशुवध से अट्ठानवे (रोग) हो गये।

(८) पराक्र म - प्रमाद

श्वास वृथा मत जाय

दीघो रस्सो च अस्सासो, पस्सासोपि च तादिसो।
चत्तारो वण्णा वत्तन्ति, नासिक ग्गेव भिक्खुनो॥

लंबा आश्वास और लंबा प्रश्वास, ओछा आश्वास और ओछा प्रश्वास - ये चारों भिक्षु (साधक) के नासिक ाग्र पर (उसकी जानक ारी में) प्रवर्तित होते रहते हैं।

पराक्र म क ा महत्त्व

दळ्हं पग्गण्ह वीरियं, मा निवत्त अभिक्क म।
मयम्पेतं विजानाम, धुवं बुद्धो भविस्ससि॥

दृढ़ पराक्र म में लगे रहो। रुको मत। आगे बढ़ते (ही) जाओ। हम जानते हैं कि तुम बुद्ध बनोगे। यह ध्रुव सत्य है।

सीले पतिट्ठाय नरो सपञ्ञो, चित्तं पञ्ञं च भावयं।
आतापी निपको भिक्खु, सो इमं विजटये जटं॥

शील में प्रतिष्ठित हुआ प्रज्ञावान व्यक्ति समाधि और विपश्यना ज्ञान क ा अभ्यास क रता है, और इस प्रक ार पुरुषार्थ में पक ा दक्ष साधक अपने अंतर्मन की जटाएं क ाट लेता है।

अपनी मुक्ति अपने हाथ

यस्स पापं क तं क म्मं, कु सलेन पिधीयते।
सोमं लोकं पभासेति, अब्भा मुत्तोव चन्दिमा॥

जो अपने पहले कि ये हुए पापक र्म को वर्तमान के कु शल क र्म से ढक लेता है, वह मेघमुक्त चंद्रमा की भांति इस लोक को खूब भासमान क रताहै।

अथ पापानि कम्मानि, करं बालो न बुज्झति।
सेहि कम्मेहि दुम्मेधो, अग्गिदड्ढोव तप्पति॥

बाल बुद्धि वाला मूर्ख (व्यक्ति) पापकर्म करते हुए होश नहीं रखता। (परंतु समय पाकर) अपने उन्हीं कर्मों के कारण वह दुर्मेध (दुर्बुद्धि) ऐसे तपता है जैसे आग में जल रहा हो।

प्रमादी की विपन्नता

बहुम्पि चे संहित भासमानो, न तक्करो होति नरो पमत्तो।
गोपोव गावो गणयं परेसं, न भागवा सामञ्ञस्स होति॥

धर्म-ग्रंथों (तिपिटक) का कितना ही पाठ करे, लेकिन यदि प्रमाद के कारण मनुष्य उन धर्म-ग्रंथों के अनुसार आचरण नहीं करता, तो दूसरों की गौवें गिनने वाले ग्वाले की तरह वह श्रमणत्व का भागी नहीं होता।

अप्रमादी की संपन्नता

पमादं अप्पमादेन, यदा नुदति पण्डितो।
पञ्ञापासादमारुय्ह, असोको सोकिनिं पजं।
पब्बतट्ठोव भूमट्ठे, धीरो बाले अवेक्खति॥

जब कोई समझदार व्यक्ति प्रमाद को अप्रमाद से परे धकेल देता (अर्थात, जीत लेता) है, तब वह प्रज्ञा-रूपी प्रासाद पर चढ़ा हुआ शोक रहित हो जाता है। (ऐसा) शोक रहित धीर (मनुष्य) शोकग्रस्त विमूढ जनों को ऐसे ही (करुणभाव से) देखता है जैसे कि पर्वत पर खड़ा हुआ (कोई व्यक्ति) धरती पर खड़े हुए लोगों को देखता हो।

(९) उत्तम पुरुष

उत्तम पुरुष के गुण

यम्हि सच्चञ्च धम्मो च, अहिंसा संयमो दमो।
स वे वन्तमलो धीरो, थेरो इति पवुच्चति॥

जिसमें सत्य, धर्म, अहिंसा, संयम ओर दम हैं; वही विगतमल, धृतिसंपन्न स्थविर कहा जाता है।

सो अत्थवा सो धम्मट्ठो, सो दक्खो सो विचक्खणो।
करेय्य रममानोपि, किच्चं धम्मत्थसंहितं॥

वह व्यक्ति अर्थवान है (उसने सही स्वार्थ सिद्ध कर लिया है), वह धर्मिष्ठ है, वह दक्ष (कुशल) है; वह विचक्षण (चतुर) है; संसार में रमता हुआ भी वह धर्मयुक्त और अर्थयुक्त काम करता है।

खत्तिया ब्राह्मणा वेस्सा, सुद्दा चण्डालपुक्कुसा।
यम्हा धम्मं विजानेय्य, सो हि तस्स नरुत्तम॥

चाहे क्षत्रिय हो या ब्राह्मण, वैश्य हो या शूद्र, चंडाल हो या पुक्कुस; जिस किसी से धर्म जाना जा सके, मुमुक्षु के लिये वही उत्तम पुरुष है।

आदर्श साधक

यथापि भद्दो आजञ्ञो, खलित्वा पतितिट्ठति।
एवं दस्सनसम्पन्नं, सम्मासम्बुद्धसावकं॥

जिस प्रकार भद्र उत्तम जाति का घोड़ा गिरने पर भी उठ खड़ा होता है, उसी प्रकार सम्यक संबुद्ध का दर्शन-संपन्न श्रावक भी।

यदा वितक्के उपरुन्धियत्तनो, नगन्तरे नगविवरं समस्सितो।
वीतद्दरो वीतखिलोव झायति, ततो रतिं परमतरं न विन्दति॥

जब कोई साधक किसी पर्वत-प्रदेश की गिरि-गुहा में निर्भय और निर्बाध होकर सम्यक रूप से ध्यान के आश्रित होता है और अपने वितर्कों को शांत कर लेता है तब उससे बढ़कर परमानंद की अनुभूति नहीं होती।

ओक्खित्तचक्खु न च पादलोलो, झानानुयुत्तो बहुजागरस्स,
उपेक्खमारब्भ समाहितत्तो, तक्कासयं कुक्कुच्चियूपछिन्दे॥

आंखें नीची हों, पांव संयत हों, ध्यानानुरत हो, बहुजागरूक हो, उपेक्षावान हो और समाधिस्थ होकर तर्कों के आश्रय और व्याकुलता को नष्ट करे।

सद्गृहस्थ के गुण

उट्ठाता कम्मधेय्येसु, अप्पमत्तो विधानवा।
समं कप्पेति जीवकं, सम्भतं अनुरक्खति॥

सद्गृहस्थ कामधंधे में उत्साही (कर्मठ) हो, अप्रमादी हो, सावधान हो, धैर्यपूर्वक जीविकोपार्जन करे और अर्जित संपत्ति का कुशल आरक्षक हो।

"भुत्ता भोगा भता भच्चा, वितिण्णा आपदासु मे।
उद्धग्गा दक्खिणा दिन्ना, अथो पञ्चबली कता।
उपट्ठिता सीलवन्तो, सञ्ञता ब्रह्मचारयो॥

यदत्थं भोगं इच्छेय्य, पण्डितो घरमावसं।
सो मे अत्थो अनुप्पत्तो, कतं अननुतापियं॥

एतं अनुस्सरं मच्चो, अरियधम्मे ठितो नरो।
इधेव नं पसंसन्ति, पेच्च सग्गे पमोदती'ति"॥

मैंने अपनी संपदा का स्वयं उपभोग किया और अपने आश्रितों एवं भृत्यों का भरण-पोषण कर उनकी सुरक्षा की। ऊर्ध्व अग्र दक्षिणाएं दीं। पंच-बलि दी (पांच प्रकार के दान-कर्म किये)। मैंने शीलवान, संयमी,

ब्रह्मचारियों की सेवा की, उनका पोषण किया। कोई भी समझदार गृहस्थ इसीलिए तो भोगसंपदा की कामना करता है। मेरी कामनाएं पूरी हुईं। मैंने सारे काम ऐसे ही किये जिनके फलस्वरूप मुझे अनुताप नहीं होता।

यों अपने सत्कर्मों का स्मरण करता हुआ सद्गृहस्थ आर्य धर्म में स्थित होता है। इस लोक में लोग उसकी प्रशंसा करते हैं और फिर मरने पर स्वर्ग में भी वह प्रमुदित होता है।

यस्सेति चतुरो धम्मा, सद्धस्स घरमेसिनो।
सच्चं धम्मो धिति चागो, स वे पेच्च न सोचति।
अस्मा लोका परं लोकं, एवं पेच्च न सोचति॥

जिस श्रद्धालु गृहस्वामी (गृहस्थ) में सत्य, धर्म, धृति (धीरज) और त्याग - ये चार गुण होते हैं वह न इस लोक में चिंताग्रस्त होता है और न ही मर कर परलोक में।

माता पिता दिसा पुब्बा, आचरिया दक्खिणा दिसा।
पुत्तदारा दिसा पच्छा, मित्तामच्चा च उत्तरा॥

दासकम्मकरा हेट्ठा, उद्धं समणब्राह्मणा।
एता दिसा नमस्सेय्य, अलमत्तो कुले गिही॥

माता-पिता पूर्व दिशा हैं, आचार्य दक्षिण दिशा; पुत्र-कलत्र पश्चिम दिशा है, मित्र-अमात्य उत्तर दिशा; दास-कर्मकर निचली दिशा है, श्रमण-ब्राह्मण ऊपरी दिशा। सही अर्थ में जो गृहस्थ है उसको चाहिए कि इन दिशाओं को नमस्कार करे।

श्रेष्ठ पुरुष को नमन

नमो ते पुरिसाजञ्ञ, नमो ते पुरिसुत्तम।
यस्स ते आसवा खीणा, दक्खिणेय्योसि मारिस॥

नमस्कार है तुम्हें हे श्रेष्ठ पुरुष! नमस्कार है तुम्हें हे उत्तम पुरुष! तुम्हारे आश्रव क्षीण हो गये हैं। तुम दक्षिणार्ह हो, हे पूज्यवर!!

पापकारी - पुण्यकारी

इध तप्पति पेच्च तप्पति, पापकारी उभयत्थ तप्पति।
इध नन्दति पेच्च नन्दति, कतपुञ्ञोउभयत्थ नन्दति॥

यहां (इस लोक में) संतप्त होता है, प्राण छोड़ कर (परलोक में) संतप्त होता है। पापकारी दोनों जगह संतप्त होता है।

यहां (इस लोक में) आनंदित होता है, प्राण छोड़ कर (परलोक में) आनंदित होता है। पुण्यकारी दोनों जगह आनंदित होता है।

स्रोतापन्न की विशेषता

किञ्चापि सो कम्मं करोति पापकं, कायेन वाचा उद चेतसा वा।
अभब्बो सो तस्स पटिच्छदाय, अभब्बता दिट्ठपदस्स वुत्ता।
इदम्पि सङ्घे रतनं पणीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु॥

(स्रोतापन्न अवस्था पर पहुँचा हुआ परमपद द्रष्टा साधक) यदि कभी काया, वाणी या चित्त से कोई पापकर्म कर भी लेता है तो वह उसे छिपा नहीं सकता। (भगवान द्वारा) कहा गया है कि निर्वाण का साक्षात्कार कर लेने वाले (व्यक्ति) के लिये (अपने दुष्कृत को गोपनीय रख पाना असंभव है)। सचमुच! यह भी श्रेष्ठ रत्नत्व है आर्य श्रावक-संघ में। इस सत्य कथन के प्रभाव से स्वस्ति हो! (मंगल हो!!)

सच्चा विजयी

सीलमेव इध अग्गं, पञ्ञवा पन उत्तमो।
मनुस्सेसु च देवेसु, सीलपञ्ञाणतो जयं॥

यहां (धर्म के क्षेत्र में) शील ही अग्र (प्रमुख) है; प्रज्ञावान ही उत्तम है। शील और प्रज्ञा से ही मनुष्यों और देवताओं में विजय होती है।

एतदत्तनि सम्भूतं, ब्रह्मयानं अनुत्तरं।
निय्यन्ति धीरा लोकम्हा, अञ्ञदत्थु जयं जयं॥

स्वयं ऐसे सर्वोत्तम ब्रह्मयान बन कर धीर पुरुष लोकों से पार हो जाते हैं और परम अवस्था प्राप्त कर जय-विजय साध लेते हैं।

मूढ़ व्यक्ति की विवशता

... अनुपट्ठितकायसति च विहरति परित्तचेतसो। तञ्च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं यथाभूतं नप्पजानाति - यत्थस्स पापका अकुसला धम्मा अपरिसेसा निरुज्झन्ति।

...वह काया के प्रति सजगता न रख कर परिसीमित चित्त का जीवन जीता है। वह व्यक्ति समाधि और प्रज्ञा द्वारा प्राप्त विमुक्ति की उस अवस्था का यथार्थतः साक्षात्कार नहीं कर सकता जिससे कि उसकी सारी अकुशल पाप-वृत्तियों का क्षय हो जाय।

पुब्बे हनति अत्तानं, पच्छा हनति सो परे।
सुहतं हन्ति अत्तानं, वीतंसेनेव पक्खिमा॥

(मूढ़ व्यक्ति) पहले अपना हनन करता है, तत्पश्चात किसी और का। (वैसे ही जैसे कि) चिड़ीमार का पक्षी पहले अपने सुख का सर्वनाश कर लेता है।

प्राणी की वास्तविकता

यथा हि अङ्गसम्भारा, होति सद्दो रथो इति।
एवं खन्धेसु सन्तेसु, होति सत्तोति सम्मुति॥

जैसे (यान के) एक-एक हिस्से को जोड़ देने से उसे 'रथ' शब्द से पुकारा जाता है, वैसे ही (शरीर और चित्त के पांचों) स्कंधों के जुड़ जाने से व्यवहार के लिए उसे प्राणी कहा जाता है। (वस्तुतः इन पांच स्कंधों से अलग कोई प्राणी नहीं है।)

(१०) लक्षण

संयत पुरुष कौन?

कायेन संवुता धीरा, अथो वाचाय संवुता।
मनसा संवुता धीरा, ते वे सुपरिसंवुता॥

जो धीर पुरुष कायसे संयत हैं, वाणी से संयत हैं, मन से संयत हैं, वे ही पूर्णतया संयत हैं।

मा जातिं पुच्छी, चरणञ्च पुच्छ, कट्ठा हवे जायति जातवेदो।
नीचाकुलीनोपि मुनी धितीमा, आजानियो होति हिरीनिसेधो॥

जाति मत पूछो। आचरण पूछो। (जिसे कोई नहीं पूजता, उस) लकड़ी में से अग्नि जन्म लेती है (जिसे कई पूजते हैं)। (इसी प्रकार) नीच (माने जाने वाले) कुल में जन्म लेकर भी कोई व्यक्ति उत्तम धीमान मुनि होता है जो लज्जाजनक कामों से दूर रहता है।

ब्राह्मण कौन?

यस्स कायेन वाचाय, मनसा नत्थि दुक्कटं।
संवुतं तीहि ठानेहि, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जो शरीर से, वाणी से और मन से दुष्कर्म नहीं करता, जो इन तीनों क्षेत्रों में संयमयुक्त है, उसे ही मैं ब्राह्मण कहता हूं।

आसा यस्स न विज्जन्ति, अस्मिं लोके परम्हि च।
निरासयं विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

जिसके (मन) में इस लोक अथवा परलोक के संबंध में कोई आशा-आकांक्षा नहीं रह गयी है, जो सभी प्रकार की आशा-आकांक्षाओं (और आसक्तियों) से मुक्त हो चुका है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

निधाय दण्डं भूतेसु, तसेसु थावरेसु च।
यो न हन्ति न घातेति, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

स्थावर व जंगम (चर व अचर) सभी प्राणियों के प्रति जिसने दंड त्याग दिया है (अर्थात, हिंसा त्याग दी है), जो न किसी की हत्या करता है, न हत्या करवाता है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूं।

न जटाहि न गोत्तेन, न जच्चा होति ब्राह्मणो।
यम्हि सच्चं च धम्मो च, सो सुची सो च ब्राह्मणो॥

न जटा से, न गोत्र से, न जन्म से ही ब्राह्मण होता है। जिसमें सत्य और धर्म है वही शुचि (पवित्र) है और वही ब्राह्मण है।

पंडित कौन?

दिट्ठे धम्मे च यो अत्थो, यो चत्थो सम्परायिको।
अत्थाभिसमया धीरो, पण्डितोति पवुच्चति॥

इन पार्थिव नेत्रों द्वारा जिस स्थूल सत्य को प्रत्यक्ष देखा जा सकता है और जो सूक्ष्म सत्य इन पार्थिव नेत्रों की दर्शन सीमा से परे है, इन दोनों ही लौकिक और पारलौकिक सत्यों को धर्म-साधना द्वारा साक्षात्कार करके जो धीर व्यक्ति दोनों का लाभ ग्रहण करता है, वही पंडित (याने, समझदार) कहा जाता है।

मुनि कौन?

अञ्ञाय लोकं परमत्थदस्सिं, ओघं समुद्दं अतितरिय तादिं।
तं छिन्नगन्थं असितं अनासवं, तं वापि धीरा मुनि वेदयन्ति॥

जो (अपनी काया के भीतर, महज चिंतन के स्तर पर नहीं, बल्कि विपश्यना द्वारा अनुभूतियों के स्तर पर नरक ,पशु, असुर, मनुज, देव, ब्रह्म आदि विभिन्न) लोकों का सही ज्ञान प्राप्त करता हुआ (काया,चित्त, चैतसिक और निर्वाण-संबंधी) परमार्थ सत्यों का स्वयं साक्षात्कार कर (तृष्णा की)

बाढ़ और (अज्ञान के दुःख-) सागर को लांघ कर (जीवन्मुक्त अवस्था में स्थित, सर्वथा) असंग, अनासक्त, अनाश्रव और छिन्न-ग्रंथि हो गया हो, समझदार लोग उसे 'मुनि' कहते हैं।

भिक्षु कौन?

चरथ, भिक्खवे, चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ, भिक्खवे, धम्मं आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ।

भिक्षुओ! चलते रहो। अनेक लोगों के भले के लिए, अनेक लोगों के सुख के लिए, देव-मनुष्यों के कल्याण के लिए, हित के लिये, सुख के लिए विचरण करते ही रहो। लोगों को धर्म का सदुपदेश दो, भिक्षुओ! ऐसा धर्म जो कि आदि में कल्याणकारी है, मध्य में कल्याणकारी है, अंत में कल्याणकारी है। (सर्वतोमुखी कल्याणकारी ही कल्याणकारी है।) उस धर्म का शब्दों के साथ, अर्थों के साथ, भावों के साथ, व्यावहारिक अभिव्यंजना के साथ प्रकटीकरण करो।ऐसा धर्म जिसमें कि केवलमात्र परिपूर्ण परिशुद्धि ही परिशुद्धि है। अशुद्धि के लिए कहीं कोई स्थान नहीं। ऐसे परम परिशुद्ध ब्रह्माचरण का प्रकाशन करो अपने ब्रह्माचरण द्वारा। ऐसे परम परिशुद्ध धर्माचरण का ज्ञापन करो अपने धर्माचरण द्वारा।

कामच्छन्दो च ब्यापादो, थिनमिद्धञ्च भिक्खुनो।
उद्धच्च विचिकिच्छा च, सब्बसोव न विज्जति॥

इस साधक-भिक्षु में कामेषणा, द्वेष, आलस्य, उद्धतता और संदेह (ये पांचों नीवरण) बिल्कुल नहीं हैं।

(११) मंगल भाव

मंगल कामना

सब्बरोगा विनीमुत्तो, सब्बसन्तापवज्जितो।
सब्बवेरमतिक्कन्तो, निब्बुतो च तुवं भव॥

तुम्हें सारे रोगों से मुक्ति मिले! सब संतापों से छुटकारा मिले! तुम्हारे सारे वैर दूर हों! और तुम निर्वाण को प्राप्त करो।

जयन्तो बोधिया मूले, सक्यानं नन्दिवड्ढनो।
एवमेव जयो होतु, जयस्सु जयमङ्गलं॥

शाक्यों के नंदिवर्द्धन (भगवान गौतम) ने बोधिवृक्ष के तले (जिस प्रकार पापी मार पर विजय प्राप्त की), उसी प्रकार तुम भी विजयलाभी बनो! जय-मंगल लाभी बनो!

दुक्खप्पत्ता च निद्दुक्खा, भयप्पत्ता च निब्भया।
सोकप्पत्ता च निस्सोका, होन्तु सब्बेपि पाणिनो॥

ये सभी प्राणी जो दुःखग्रस्त हैं वे दुःखमुक्त हों! जो भयग्रस्त हैं वे भयमुक्त हों! जो शोकग्रस्त हैं वे शोकमुक्त हों!

सर्व-मंगल में स्व-मंगल

किं मे एकेन तिण्णेन, पुरिसेन थामदस्सिना।
सब्बञ्ञुतं पापुणित्वा, सन्तारेस्सं सदेवकं॥

मेरे एक अकेले के तर जाने से क्या होगा? केवल इसी में अपना पुरुषार्थ क्या देखूं? मुझे तो सर्वज्ञता प्राप्त कर अनेकानेक देव-मनुष्यों के तरने में सहायक बनना है।

कर भला तो हो भला

सक्कत्वा सक्कतो होति, गरू होति सगारवो।
वण्णकित्तिभतो होति, यो मित्तानं न दुब्भति॥

जो मित्रों के साथ द्रोह नहीं करता, वह सत्कार करके सत्कार पाता है, गौरव करके गौरवनीय होता है, उसे भरपूर प्रशंसा और कीर्ति मिलती है।

पूजको लभते पूजं, वन्दको पटिवन्दनं।
यसो कित्तिञ्च पप्पोति, यो मित्तानं न दुब्भति॥

जो मित्रों के साथ द्रोह नहीं करता, उस पूजा करने वाले की पूजा होती है, वंदना करने वाले की वंदना होती है, वह यश और कीर्ति को प्राप्त होता है।

हिंसक की विमुक्ति

लोहितपाणि पुरे आसिं, अङ्गुलिमालोति विस्सुतो।
सरणगमनं पस्स, भवनेत्ति समूहता॥

मैं पहले खून-रंगे हाथों वाला कुख्यात अंगुलिमाल था। अहो! (बुद्ध के प्रति मेरे इस) शरणगमन को देखो! मैंने भवनेत्री (भव के आधार को ही) उखाड़ फेंका है।

उत्तम मंगल

मातापिता-उपट्ठानं, पुत्तदारस्स सङ्गहो।
अनाकुला च कम्मन्ता, एतं मङ्गलमुत्तमं॥

माता-पिता की सेवा करना, पुत्र-स्त्री (परिवार) का पालन-पोषण करना, और आकुल-व्याकुल न करने वाला निष्पाप व्यवसाय करना - यह उत्तम मंगल है।

बाहुसच्चञ्च सिप्पञ्च, विनयो च सुसिक्खितो।
सुभासिता च या वाचा, एतं मङ्गलमुत्तमं॥

अनेक विद्याओं को अर्जित करना, शिल्प-कलाओं में निपुण होना, विनय अनुशासन में सुशिक्षित होना, और वार्तालाप में सुभाषी होना - यह उत्तम मंगल है।

असेवना च बालानं, पण्डितानञ्च सेवना।
पूजा च पूजनीयानं, एतं मङ्गलमुत्तमं॥

मूर्खों की संगति न करना, बुद्धिमानों की संगति करना और पूज्यों की पूजा करना - यह उत्तम मंगल है।

तपो च ब्रह्मचरियञ्च, अरियसच्चान दस्सनं।
निब्बानसच्छिकिरिया च, एतं मङ्गलमुत्तमं॥

तप (करना), ब्रह्मचर्य का पालन करना, आर्यसत्यों का दर्शन (करना) और निर्वाण का साक्षात्कार करना - यह उत्तम मंगल है।

सब्बे सत्ता सब्बे पाणा, सब्बे भूता च केवला।
सब्बे भद्रानि पस्सन्तु, मा कञ्चि पापमागमा॥

सभी सत्त्व, सभी प्राणी, सभी जन्मे हुए जीव, सब मंगल का ही दर्शन करें। रंचमात्र भी पाप में न लगें।

(१२) धर्मपथ

आनंदपथ

यदा असोकं विरजं असङ्खतं, सन्तं पदं सब्बकिलेससोधनं।
भावेति संयोजनच्छिदं, ततो रतिं परमतरं न विन्दति॥

जब कोई साधक शोक-विहीन, रजविहीन, असंस्कृत, सर्व-क्लेश-शोधक परम शांत-पद निर्वाण का साक्षात्कार कर उसे भावित करता है और इस अभ्यास द्वारा अपने संयोजन-बंधन तोड़ता है तब (वह) जिस परमानंद का अनुभव करता है उससे बढ़कर और कोई आनंद नहीं होता।

सुत्वान धम्मं महतो महारसं, सब्बञ्ञुतञ्ञाणवरेन देसितं।
मग्गं पपज्जिं अमतस्स पत्तिया, सो योगक्खेमस्स पथस्स कोविदो॥

उत्तम सर्वज्ञ ज्ञानी द्वारा उपदेशित मधुर रस वाले महान धर्म को सुनकर योगक्षेम (निर्वाण) पथ के कुशल जानकार द्वारा निर्देशित मार्ग पर मैं अमृत की प्राप्ति के लिये चल पड़ा।

श्रेष्ठ मार्ग

मग्गानट्ठङ्गिको सेट्ठो, सच्चानं चतुरो पदा।
विरागो सेट्ठो धम्मानं, द्विपदानञ्च चक्खुमा॥

मार्गों में अष्टांगिक मार्ग श्रेष्ठ है, सच्चाइयों में चार आर्य-सत्य, धर्मों में वीतरागता श्रेष्ठ है, द्विपदों (मनुष्यों) में चक्षुमान बुद्ध।

प्रकाश की खोज

को नु हासो किमानन्दो, निच्चं पज्जलिते सति।
अन्धकारेन ओनद्धा, पदीपं न गवेसथ॥

जहां प्रतिक्षण (सब कुछ) जल ही रहा हो, वहां कैसी हँसी? कैसा आनंद? (कैसा आमोद? कैसा प्रमोद?) ऐ अंधकार से घिरे हुए भोले लोगो! तुम (ज्ञान-रूपी) प्रदीप की खोज क्यों नहीं करते?

(१३) जन्म – मृत्यु

मार का वार खाली जाय

असुभानुपस्सिं विहरन्तं, इन्द्रियेसु सुसंवुतं।
भोजनम्हि च मत्तञ्ञुं, सद्धं आरद्धवीरियं।
तं वे नप्पसहति मारो, वातो सेलंव पब्बतं॥

अशुभ को अशुभ जान कर साधना करने वाले, इंद्रियों में सुसंयत, भोजन की मात्रा के जानकार, श्रद्धावान और उद्योगरत को मार उसी प्रकार नहीं डिगा सकता, जैसे कि वायु शैल पर्वत को।

मृत्यु का वर्चस्व

अप्पं वत जीवितं इदं, ओरं वस्ससतापि मिय्यति।
यो चेपि अतिच्च जीवति, अथ खो सो जरसापि मिय्यति॥

यह जीवन सचमुच कितना अल्प है, लघु है। मानव पूरे सौ वर्ष भी नहीं जी पाता और मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। यदि कोई सौ वर्ष से अधिक भी जी लेता है तो आखिर जर्जरित होकर मृत्यु को प्राप्त होता ही है।

यथा दण्डेन गोपालो, गावो पाजेति गोचरं।
एवं जरा च मच्चु च, आयुं पाजेन्ति पाणिनं॥

जैसे ग्वाला लाठी से गायों को हांक कर चरागाह में ले जाता है, वैसे ही बुढ़ापा और मृत्यु प्राणियों की आयु को हांक कर ले जाते हैं।

यथापि कुम्भकारस्स कतं मत्तिकभाजनं।
खुद्दकञ्च महन्तञ्च यं पक्कं यञ्च आमकं।
सब्बं भेदनपरियन्तं एवं मच्चान जीवितं॥

जैसे कुम्हार के बनाये सभी मिट्टी के भाजन छोटे हों या बड़े, पक्के हों या कच्चे, फूटकर नष्ट ही होने वाले होते हैं - ऐसे ही प्राणियों के जीवन भी।

दहरा च हि वुड्ढा च, ये बाला ये च पण्डिता।
अड्ढा चेव दलिद्दा च, सब्बे मच्चुपरायणा॥

तरुण हो या वृद्ध, मूर्ख हो या पंडित, धनी हो या निर्धन, सभी मरणधर्मा हैं।

खत्तिये ब्राह्मणे वेस्से, सुद्दे चण्डालपुक्कुसे।
न किञ्चि परिवज्जेति, सब्बमेवाभिमद्दति॥

मृत्युराज क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र और चंडाल - किसीको भी नहीं छोड़ता, सबको कुचल डालता है।

न मरने का भय, न जीने की चाह

नाभिनन्दामि मरणं, नाभिनन्दामि जीवितं।
निक्खिपिस्सं इमं कायं, सम्पजानो पटिस्सतो।

मैं न मृत्यु का अभिनंदन करता हूं, न जीवित रहने का अभिनंदन करता हूं। (जब समय आयगा) स्मृति और संप्रज्ञान सहित मैं इस शरीर को छोड़ दूंगा।

(१४) अनित्यता

अनित्यता का धर्म

“सब्बे सङ्खारा अनिच्चा”ति, यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया॥

“सारे संस्कार अनित्य हैं”(याने, जो कुछ उत्पन्न होता है वह नष्ट होता ही है)। इस (सच्चाई) को जब कोई (विपश्यना-) प्रज्ञा से देख (-जान) लेता है, तब वह दुःख में निर्वेद प्राप्त करता है। ऐसा है यह विशुद्धि (विमुक्ति) का मार्ग!

“सब्बे सङ्खारा दुक्खा”ति, यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया॥

“सारे संस्कार दुःख हैं” (याने, जो कुछ उत्पन्न होता है, वह नाशवान होने के कारण दुःख ही है)। इस (सच्चाई) को जब कोई (विपश्यना-) प्रज्ञा से देख (-जान) लेता है, तब वह दुःख में निर्वेद प्राप्त करता है। ऐसा है यह विशुद्धि (विमुक्ति) का मार्ग!

अनिच्चा वत सङ्खारा, उप्पादवयधम्मिनो।
उपज्जित्वा निरुज्झन्ति, तेसं वूपसमो सुखो॥

सचमुच सारे संस्कार अनित्य ही तो हैं। (उत्पन्न होने वाली सभी स्थितियां, वस्तु, व्यक्ति अनित्य ही तो हैं।) उत्पन्न होना और नष्ट हो जाना यह तो इनका धर्म (=स्वभाव) ही है। उत्पन्न हो होकर नष्ट होते होते जब उनका पूर्णतया उपशमन हो जाता है (पुनः उत्पन्न होने का क्रम समाप्त हो जाता है), उसी का नाम परम सुख है। (वही निर्वाण-सुख है)।

न गामधम्मो निगमस्स धम्मो, न चापियं एककुलस्स धम्मो।
सब्बस्स लोकस्स सदेवकस्स, एसेव धम्मो यदिदं अनिच्चता॥

यह जो अनित्यता का धर्म (=स्वभाव) है वह न किसी ग्रामविशेष का है, न किसी नगरविशेष का और न ही किसी एक परिवारविशेष का। यह अनित्यता तो देवताओं सहित समस्त लोकों का धर्म (=स्वभाव) है।

अनात्मबोध

"सब्बे धम्मा अनत्ता"ति, यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया॥

"सभी धर्म अनात्म हैं" (याने, लोकीय अथवा लोकोत्तर जो कुछ भी है, वह सब अनात्म है, 'मैं', 'मेरा' नहीं है)। इस (सच्चाई) को जब कोई (विपश्यना-) प्रज्ञा से देख (-जान) लेता है, तब वह दुःख में निर्वेद प्राप्त करता है। ऐसा है यह विशुद्धि (विमुक्ति) का मार्ग!

संवेदनाओं का प्रपंच

यथा पि वाता आकासे, वायन्ति विविधा पुथू।
पुरत्थिमा पच्छिमा चा पि, उत्तरा अथ दक्खिणा॥

सरजा अरजा चा पि, सीता उण्हा च एकदा।
अधिमत्ता परित्ता च, पुथू वायन्ति मालुता॥

तथेविमस्मिं कायस्मिं, समुप्पज्जन्ति वेदना।
सुखदुक्खसमुप्पत्ति, अदुक्खमसुखा च या॥

जैसे आकाश में विविध प्रकार की वायु प्रवहमान होती हैं - पूर्वी, पश्चिमी, उत्तरी, और दक्षिणी भी; धूलभरी और धूलविहीन भी, कभी शीतल और कभी उष्ण, प्रमत्त और शांत भी, वैसे ही शरीर में भी वेदनाएं उत्पन्न होती हैं - सुखद भी, दुःखद भी, अदुःखद-असुखद भी।

पित्तं सेम्हञ्च वातो च, सन्निपाता उतूनि च।
विसमं ओपक्क मिकं, क म्मविपाके न अट्ठमी॥

पित्त के कारण, कफ के कारण, वात के कारण, सन्निपात (तीनों के मिलने) के कारण, ऋतु के कारण, विषम (भोजन) के कारण, कायक्लेश के साधना-उपक्रम के कारण, और आठवें पूर्व-कर्मों के पकने के कारण शरीर में भिन्न-भिन्न प्रकार की संवेदनाएं होती रहती हैं।

न वेदनं वेदयति सपञ्ञो, सुखम्पि दुक्खम्पि बहुस्सुतोपि।
अयञ्च धीरस्स पुथुज्जनेन, महा विसेसो कु सलस्स होति॥

(शुद्ध धर्म का) बहुश्रुत प्रज्ञावान व्यक्ति शरीर पर होने वाली सुखद अथवा दुःखद संवेदनाओं को भोगता नहीं। कुशल के क्षेत्र में अज्ञानी के मुकाबले ज्ञानी की यही महान विशेषता होती है।

सारिपुत्तो एतदवोच –

"कि मारम्मणा, समिद्धि, पुरिसस्स सङ्कप्पवितक्का उप्पज्जन्ती"ति?

"नामरूपारम्मणा, भन्ते"ति।

"ते पन, समिद्धि, किं समोसरणा"ति?

"वेदनासमोसरणा, भन्ते"ति।

सारिपुत्र बोले -

"हे समिद्धि! किस आलंबन के आधार पर लोगों के संकल्प-विकल्प उत्पन्न होते हैं?"

"नाम-रूप (शरीर और मन) के आधार पर, भंते!"

"हे समिद्धि! ये संकल्प-विकल्प किससे संयुक्त हो जाते हैं?"

"भंते! ये शरीर की संवेदनाओं के साथ संयुक्त हो जाते हैं।"

तिस्सो इमे, भिक्खवे, वेदना। कतमा तिस्सो? सुखा वेदना, दुक्खा वेदना, अदुक्खमसुखा वेदना। सुखाय, भिक्खवे, वेदनाय रागानुसयो पहातब्बो, दुक्खाय

वेदनाय पटिघानुसयो पहातब्बो, अदुक्खमसुखाय वेदनाय अविज्जानुसयो पहातब्बो।

साधको! यह तीन प्रकार की शारीरिक वेदनाएं होती हैं। कौन सी तीन? सुखद संवेदना, दुःखद संवेदना, अदुःखद-असुखद संवेदना।

साधको! सुखद संवेदनाओं के प्रति (अंतर्मन की गहराइयों में) जो सुषुप्त राग-संस्कार हैं उसका त्याग करना चाहिए। दुःखद संवेदनाओं के प्रति (अंतर्मन की गहराइयों में) जो सुषुप्त द्वेष-संस्कार हैं उसका त्याग करना चाहिए। अदुःखद-असुखद संवेदनाओं के प्रति (अंतर्मन की गहराइयों में) जो सुषुप्त अविद्या-संस्कार हैं उसका त्याग करना चाहिए।

(१५) विकार

क्रोध व लोभ चढ़ें जब सिर पर

कुद्धो अत्थं न जानाति, कुद्धो धम्मं न पस्सति।
अन्धतमं तदा होति, यं कोधो सहते नरं॥

लुद्धो अत्थं न जानाति, लुद्धो धम्मं न पस्सति।
अन्धतमं तदा होति, यं लोभो सहते नरं॥

क्रुद्ध व्यक्ति अपना भला नहीं जानता। क्रुद्ध व्यक्ति धर्म नहीं देख सकता। जिसको क्रोध जीत लेता है, वह उस समय गहरे अंधकार में होता है।

लोभ-लुब्ध व्यक्ति अपना भला नहीं जानता। लोभ-लुब्ध व्यक्ति धर्म नहीं देख सकता। जिसको लोभ जीत लेता है वह उस समय गहरे अंधकार में होता है।

आसक्त बने विवादी, अनासक्त हो निर्विवादी

उपयो हि धम्मेसु उपेति वादं, अनूपयं केन कथं वदेय्य।
अत्ता निरत्ता न हि तस्स अत्थि, अथोसि सो दिट्ठिमिधेव सब्बं॥

धर्म में आसक्त व्यक्ति ही विवाद में पड़ता है। जो अनासक्त है वह क्यों और कैसे विवाद में पड़ेगा? उसने सारी दार्शनिक मान्यताओं को त्याग दिया है। उसके लिये न आत्मवाद है, न नैरात्मवाद।

गुण - अवगुण की परख

सक गुणं सक दोसं यो, जानाति सो पण्डितो।
पर गुणं पर दोसं यो, जानाति सो पण्डितो॥

जो अपने गुणों को और अपने दोषों को जानता है, वही पंडित है, वही समझदार है। जो पराये गुणों और पराये दोषों को जानता है, वही पंडित है, वही समझदार है।

कर्म

कर्म ही प्रधान

न जच्चा वसलो होति, न जच्चा होति ब्राह्मणो।
कम्मुना वसलो होति, कम्मुना होति ब्राह्मणो॥

न कोई जन्म से वृषल (चांडाल) होता है, न ही जन्म से ब्राह्मण। कर्म से ही कोई वृषल होता है, कर्म से ही ब्राह्मण।

जैसी करनी वैसी भरनी

अत्तना हि कतं पापं, अत्तना सङ्किलिस्सति।
अत्तना अकतं पापं, अत्तनाव विसुज्झति।
सुद्धी असुद्धि पच्चत्तं, नाञ्ञो अञ्ञं विसोधये॥

अपने द्वारा किया गया पाप ही अपने को मैला करता है। स्वयं पाप न करे तो आदमी आप ही विशुद्ध बना रहे। शुद्धि अशुद्धि तो प्रत्येक मनुष्य की अपनी-अपनी ही है। (अपने-अपने ही अच्छे बुरे कर्मों के परिणामस्वरूप है।) कोई दूसरा भला किसी दूसरे को कैसे शुद्ध कर सकता है? (कैसे मुक्त कर सकता है?)

न अन्तलिक्खे न समुद्दमज्झे, न पब्बतानं विवरं पविस्स।
न विज्जती सो जगतिप्पदेसो, यत्थट्ठितो मुच्चेय्य पापकम्मा॥

न (अनंत) आकाश में, न सागर (की गहराइयों) में, न पर्वतों की (गुहा-) कंदराओं में प्रवेश करके- (इस) जगत में, कहीं भी तो ऐसा स्थान नहीं है जहां ठहरा हुआ (कोई) पापकर्मों (अकुशल संस्कारों के कर्मफलों) को भोगने से बच सके।

यो पाणमतिपातेति, मुसावादञ्च भासति।
लोके अदिन्नमादियति, परदारञ्च गच्छति।

सुरामेरयपानञ्च, यो नरो अनुयुञ्जति।
इधेवमेसो लोकस्मिं, मूलं खणति अत्तनो॥

जो संसार में हिंसा करता है, झूठ बोलता है, चोरी करता है, परस्त्रीगमन करता है, मद्यपान (सुरा एवं मेरय का पान) करता है, वह व्यक्ति यहीं - इसी लोक में - अपनी जड़ खोदता है (अर्थात, अनाथ होकर विचरता है)।

मावोच फरुसं कञ्चि, वुत्ता पटिवदेय्यु तं।
दुक्खा हि सारम्भकथा, पटिदण्डा फुसेय्यु तं॥

तुम किसी को कठोर वचन मत बोलो, भले बदले में दूसरे कठोर ही बोलें। बोलोगे तो प्रतिक्रियास्वरूप तुम्हें दंड ही मिलेगा, क्योंकि कठोर वचन के आरंभ से दुःख ही होता है।

चरन्ति बाला दुम्मेधा, अमित्तेनेव अत्तना।
करोन्ता पापकं कम्मं, यं होति कटुकं फलं॥

बाल-बुद्धि वाले मूर्खजन अपने ही शत्रु बन कर आचरण करते हैं और ऐसे पापकर्म करते हैं जिनका फल (स्वयं उनके लिये ही) कड़ुवा होता है।

अब देरी का क्या काम?

अज्जेव किच्चमातप्पं, को जञ्ञा मरणं सुवे।
न हि नो सङ्गरं तेन, महासेनेन मच्चुना॥

जो भी कुशल कर्म करने हैं, आज ही कर ले। (कल पर मत टाल)। कौन जाने कल ही मरण हो जाय। (मरण के अनेकानेक निमित्त-कारणों वाली) इस विशाल महासेना के सेनापति मृत्युराज से हमारी कोई लिखा-पढ़ी (समझौता) तो है नहीं (कि वह हमारे द्वारा निश्चित समय पर ही आयगा)।

उट्ठहथ निसीदथ, को अत्थो सुपितेन वो।
आतुरानञ्हि का निद्दा, सल्लविद्धान रुप्पतं॥

उठ! बैठ! सोने से तुम्हें क्या मिलेगा भला? जिन्हें कांटा चुभा हो उन व्याकुल रोगियों को नींद कैसी? (शीघ्र अपना कांटा निकालें।)

किये ही होय

अधिगतमिदं बहूहि, अमतं अज्जापि च लभनीयमिदं।
यो योनिसो पयुञ्जति, न च सक्का अघटमानेन॥

बहुतों ने यह अमृत प्राप्त किया है। और आज भी यह प्राप्त किया जा सकता है। पर प्राप्त वही करता है जो भली प्रकार प्रयत्न करता है। बिना पुरुषार्थ (प्रयत्न) के प्राप्त नहीं होता।

सुत्वा तथा ये न करोन्ति बाला, चरन्ति दुक्खेसु पुनप्पुनं ते।
सुत्वा तथा ये पटिपत्तियुत्ता, भवन्ति ते सच्चदसा सपञ्ञा॥

जो मूर्ख व्यक्ति धर्म के मूलभूत सिद्धांतों को सुनते हैं पर उनका पालन नहीं करते, वे बार-बार दुःखों के जीवन में से ही गुजरते हैं।

जो सुनते हैं और तदनुसार आचरण करते हैं, वही सत्यदर्शी प्रज्ञावान होते हैं।

(१६) वाणी

उपमा से धर्म-देशना

अच्चारद्धम्हि वीरियम्हि, सत्था लोके अनुत्तरो।
वीणोपमं करित्वा मे, धम्मं देसेसि चक्खुमा॥

संसार में अनुत्तर चक्षुमान धर्म शास्ता भगवान बुद्ध ने, अतियों में उलझ कर श्रम करनेवाले मुझ (अबोध) को वीणा की उपमा देकर धर्म की देशना दी।

बुद्ध की प्रबुद्ध वाणी

ये धम्मा हेतुप्पभवा, तेसं हेतुं तथागतो आह।
तेसञ्च यो निरोधो, एवंवादी महासमणो॥

जो भी स्थितियां कारणों से उत्पन्न होती हैं, तथागत ने उनके उत्पत्ति-कारण बताये हैं और साथ ही उनका निरोध भी। यही उस महाश्रमण भगवान बुद्ध का सिद्धांत है, मार्ग है।

यो हि पस्सति सद्धम्मं, सो मं पस्सति पण्डितो।
अपस्समानो सद्धम्मं, मं पस्सम्पि न पस्सति॥

जो समझदार व्यक्ति सद्धर्म को देखता है, वही मुझे देखता है। जो सद्धर्म को नहीं देखता, वह मुझे देखता हुआ भी नहीं देखता।

अयमेव खो, भिक्खु, अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो ब्रह्मचरियं। यो खो, भिक्खु, रागक्खयो दोसक्खयो मोहक्खयो, इदं ब्रह्मचरियपरियोसानं।

भिक्षु! यह जो आर्य अष्टांगिक मार्ग है यही ब्रह्मचर्य है। यह जो राग-क्षय, द्वेष-क्षय, मोह-क्षय है यही ब्रह्मचर्य की परिणति है।

अभिञ्ञेय्यं अभिञ्ञातं, भावेतब्बञ्च भावितं।
पहातब्बं पहीनं मे, तस्मा बुद्धोस्मि ब्राह्मण॥

जिसे जानना था उसे जान लिया, जिसे अनुभव करना था उसे अनुभवित कर लिया, जिसका मुझे प्रहाण करना था, वह प्रहीण हो गया। हे ब्राह्मण! इसलिए मैं बुद्ध हूं।

यथाद्दक्खि तथाक्खासि, विमलो भूरिमेधसो।
निक्कामो निब्बनो नागो, किस्स हेतु मुसा भणे॥

विमल महाप्रज्ञ ने जैसा देखा, अनुभव किया, वैसा ही कहा। भगवान निष्काम हैं, वितृष्ण हैं। नाग (पापरहित) हैं। झूठ क्यों बोलेंगे भला!

उदान वाक्य

नमो ते बुद्ध वीरत्थु, विप्पमुत्तोसि सब्बधि।
तुय्हापदाने विहरं, विहरामि अनासवो॥

हे बुद्ध! हे वीर! आपको नमस्कार! आप सभी बंधनों से विमुक्त हैं। आपके उपदेशों के अनुसार आचरण कर (जीवन जीकर) मैं आश्रव-रहित (वासना-रहित) हो विहार करता हूं।

सब्बदुक्खं परिञ्ञातं, हेतुतण्हा विसोसिता।
भावितो अट्ठङ्गिको मग्गो, निरोधो फुसितो मया॥

मैंने सारे दुःख का परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया है। दुःख के कारण तृष्णा को सुखा लिया (उसे समाप्त कर लिया) है। अष्टांगिक मार्ग को भावित कर लिया है और निरोध (निर्वाणिक) अवस्था का स्पर्श कर लिया है। (जो करना था सब कर लिया। मैं कृतकृत्य हुई, मुक्त हुई।)

यो मे धम्ममदेसेसि, सन्दिट्ठिकमकालिकं।
तण्हक्खयमनीतिकं, यस्स नत्थि उपमा क्वचि॥

जिसे स्वयं अनुभूति द्वारा देखा जा सके (सन्दिट्ठिको), जो तत्क्षण फल देने वाला है (अकालिको), जो तृष्णा का क्षय करने वाला है (तण्हक्खयो),

जिसे धारण करने में जरा भी अहित नहीं हो सकता (अनीतिको), ऐसे धर्म को जिन्होंने मुझे दिया उनकी कोई उपमा नहीं है - वे निरुपम हैं।

उत्तम वाणी

सुभासितं उत्तममाहु सन्तो, धम्मं भणे नाधम्मं तं दुतियं।
पियं भणे नाप्पियं तं ततियं, सच्चं भणे नालिकं तं चतुत्थन्ति॥

संतों ने कल्याणकारी अच्छी वाणी को ही उत्तम कहा है। (जो परकल्याणकारी नहीं है, ऐसी वाणी न बोले - यह प्रथम उपदेश है।) धर्म की ही वाणी बोले, अधर्म की नहीं - यह दूसरा उपदेश है। प्रिय बोले, अप्रिय नहीं - यह तीसरा है। और सत्य बोले, असत्य नहीं - यह है चौथा।

विवादं भयतो दिस्वा, अविवादञ्च खेमतो।
समग्गा सखिला होथ, एसा बुद्धानुसासनी॥

विवाद में भय और अविवाद में कुशलक्षेम देखते हुए एकता बनाये रखे और मृदुभाषी रहे - यही बुद्धों का अनुशासन है।

मौन की महत्ता

कायमुनिं वचीमुनिं, चेतोमुनिं अनासवं।
मुनिं मोनेय्यसम्पन्नं, आहु सब्बपहायिनं॥

जिसकी काया मौन है, जिसकी वाणी मौन है, जिसका चित्त मौन है - ऐसे मौन-संपन्न, आश्रव-विहीन, सर्वस्व-त्यागी को मुनि कहते हैं।

(१७) बोधि

सत्य बोध

चतूसु समुद्देसु जलं परित्तकं,
ततो बहुं अस्सुजलं अनप्पकं ।
दुक्खेन फुट्ठस्स नरस्स सोचनो,
किं कारणा अम्म तुवं पमज्जसी ॥

बार-बार दुःख और शोक में निमग्न हुए व्यक्ति ने इतना अश्रुजल बहाया है जिसके मुकाबले चारों महासमुद्रों का जल भी कम है। इसे समझ। बेटी! तू क्यों बेहोशी में डूबी है?

(१८) बुद्ध वंदना

बुद्ध की सही वंदना

आरद्धवीरिये पहितत्ते, निच्चं दळ्हपरक्कमे।
समग्गे सावके पस्स, एतं बुद्धान वन्दनं॥

देखो! ये श्रावक किस प्रकार (एकत्र होकर) समग्र रूप से साधना में लगे हैं। (चित्त-शुद्धि के लिए) नित्य दृढ़ पराक्रम करते रहते हैं। सचमुच यही है बुद्धों की वंदना!

सिक्खासाजीवसम्पन्नो, इन्द्रियेसु सुसंवुतो।
नमस्समानो सम्बुद्धं, विहासि अपराजितो॥

बुद्ध की शिक्षा और शुद्ध आजीविका से युक्त होकर, मैं इंद्रियसंयत और अजेय हुआ और यों बुद्ध को नमस्कार करता हुआ विहार करने लगा।

(१९) बुद्ध शिक्षा

बुद्ध का शासन

दुक्खञ्चेव पञ्ञापेमि, दुक्खस्स च निरोधं।

मैं केवल दुःख और दुःख-निरोध का ही प्रज्ञापन करता हूं।

बोज्झङ्गो सतिसङ्खातो, धम्मानं विचयो तथा।
वीरियं पीति पस्सद्धि, बोज्झङ्गा च तथा परे॥

समाधुपेक्खा बोज्झङ्गा, सत्तेते सब्बदस्सिना।
मुनिना सम्मदक्खाता, भाविता बहुलीकता।
संवत्तन्ति अभिञ्ञाय, निब्बाणाय च बोधिया॥

स्मृति, धर्म-विचय, वीर्य, प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधि और उपेक्षा - ये सात बोध्यंग हैं जिनका सर्वदर्शी मुनिराज बुद्ध ने सम्यक प्रकार से आख्यान किया, उन्हें भावित किया (और) उनका बहुलीकरण किया। (ये सातों) अभिज्ञा, निर्वाण और परम ज्ञान प्राप्त कराने वाले हैं।

वेदियमानस्स यो पनाहं, भिक्खवे, इदं दुक्खन्ति पञ्ञपेमि,
अयं दुक्खसमुदयोति पञ्ञपेमि, अयं दुक्खनिरोधोति पञ्ञपेमि,
अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदाति पञ्ञपेमि॥

जो व्यक्ति शरीर पर होने वाली संवेदनाओं का अनुभव कर रहा हो, हे भिक्षुओ! मैं -

उसी को यह सत्य प्रज्ञापित करता हूं (सिखाता हूं) - यह दुःख है।

उसी को यह सत्य प्रज्ञापित करता हूं (सिखाता हूं) - यह दुःख की उत्पत्ति है।

उसी को यह सत्य प्रज्ञापित करता हूं (सिखाता हूं) - यह दुःख का निरोध है।

उसी को यह सत्य प्रज्ञापित करता हूं (सिखाता हूं) - यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है।

सुत्वा सुभासितं वाचं, बुद्धस्सादिच्चबन्धुनो।
पञ्चव्याधिञ्हि निपुणं, वालग्गं उसुना यथा॥

आदित्यबंधु भगवान बुद्ध के सुभाषित वचन को सुनकर उनकी बतायी हुई विधि द्वारा मैंने वस्तुस्थिति का उसी प्रकार प्रतिभेदन कर परम सत्य को जान लिया जिस प्रकार कि किसी कुशल धनुर्धारी के तीर द्वारा बाल का अग्रभाग बींध दिया जाता है।

बुद्धों की शिक्षा

सब्बपापस्स अकरणं, कुसलस्स उपसम्पदा।
सचित्तपरियोदपनं, एतं बुद्धान सासनं॥

सभी पापकर्मों (अकुशल कर्मों) को न करना, पुण्यकर्मों की संपदा संचित करना, (पांच नीवरणों से) अपने चित्त को परिशुद्ध करना (धोते रहना) - यही बुद्धों की शिक्षा है।

वाचानुरक्खी मनसा सुसंवुतो, कायेन नाकुसलं कयिरा।
एते तयो कम्मपथे विसोधये, आराधये मग्गमिसिप्पवेदितं॥

वाणी को संयत रखे, मन को संयत रखे और शरीर से कोई अकुशल (काम) न करे। इन तीनों कर्मपथों (कर्मेंद्रियों) का विशोधन करे। ऋषि (बुद्ध) के बताये (अष्टांगिक) मार्ग का अनुसरण करे।

बुद्धमप्पमेय्यं अनुस्सर पसन्नो,
धम्ममप्पमेय्यं अनुस्सर पसन्नो।

सङ्घमप्पमेय्यं अनुस्सर पसन्नो,
पीतिया फुटसरीरो होहिसि सततमुदग्गो॥

असीम अप्रमेय बुद्ध, धर्म और संघ को याद करके प्रसन्न हो जाओ। शरीर को प्रीति-प्रमोद से भर लो और सदा उल्लास-उमंग के साथ रहो।

(२०) निर्वाण

निर्वाण का साक्षात्कार कैसे?

यतो यतो सम्मसति, खन्धानं उदयब्बयं।
लभती पीतिपामोज्जं, अमतं तं विजानतं॥

साधक सम्यक सावधानता के साथ जब-जब (शरीर और चित्त) स्कंधों के उदय-व्यय (रूपी अनित्य स्वभाव की) विपश्यना द्वारा अनुभूति करता है, तब-तब प्रीति-प्रमोद रूपी अध्यात्म-सुख की उपलब्धि करता हुआ अमृत पद (निर्वाण) का साक्षात्कार कर लेता है।

निर्वाण - परम सुख

आरोग्यपरमा लाभा, सन्तुट्ठिपरमं धनं।
विस्सासपरमा ञाति, निब्बानं परमं सुखं॥

आरोग्य परम लाभ है, संतुष्टि परम धन है, विश्वास परम बंधु है, निर्वाण परम सुख है।

मोक्ष के अधिकारी

खत्तिया ब्राह्मणा वेस्सा, सुद्दा चण्डालपुक्कुसा।
सब्बेव सोरता दन्ता, सब्बेव परिनिब्बुता॥

वे सभी जो सुरत हैं, विनम्र हो सत्कर्मों में लगे हैं, सुदंत हैं, आत्मसंयम का जीवन जीते हैं; वे सभी परिनिवृत्त हैं; चाहे वे क्षत्रिय हों, ब्राह्मण हों, वैश्य हों, शूद्र हों, चांडाल हो या भंगी हों।

सजगता से विमुक्ति

येसञ्च सुसमारद्धा, निच्चं कायगता सति।
अकिच्चं ते न सेवन्ति, किच्चे सातच्चकारिनो।
सतानं सम्पजानानं, अत्थं गच्छन्ति आसवा॥

जिनकी कायानुस्मृति नित्य उपस्थित रहती है (याने, जो सतत कायानुपश्यना करते रहते हैं, काय के प्रति एवं काय में होने वाली संवेदनाओं के प्रति जागरूक रहते हैं), वे (साधक) कभी कोई अकरणीय काम नहीं करते, सदा करणीय ही करते हैं। (ऐसे) स्मृतिमान और प्रज्ञावान (साधकों) के आश्रव क्षय को प्राप्त होते हैं (अर्थात, उनके चित्त के मैल नष्ट होते हैं)।

सुप्पबुद्धं पबुज्झन्ति, सदा गोतमसावका।
येसं दिवा च रत्तो च, निच्चं कायगता सति॥

जिनमें नित्य, दिन हो या रात, कायगतास्मृति (याने, काया के प्रति जागरूकता) की निरंतरता बनी रहती है, (भगवान) गौतम (बुद्ध) के (वे) श्रावक सदैव भली-भांति प्रबोधित रहते हैं।

"यतो च भिक्खु आतापी, सम्पजञ्ञं न रिञ्चति।
ततो सो वेदना सब्बा, परिजानाति पण्डितो॥

सो वेदना परिञ्ञाय, दिट्ठे धम्मे अनासवो।
कायस्स भेदा धम्मट्ठो, सङ्ख्यं नोपेति वेदगू"ति॥

जब कोई तपस्वी साधक संप्रज्ञान (प्रज्ञा पर आधारित शरीर वा चित्त-संबंधी संपूर्ण जानकारी) को कभी नहीं छोड़ता है, तब वह ज्ञानी (व्यक्ति) सभी प्रकार की संवेदनाओं को भली प्रकार जान लेता है। वह संवेदनाओं को देखते-देखते उनका परिज्ञान कर इसी लोक में आश्रवहीन हो जाता है। संवेदनाओं का मर्मज्ञ ऐसा धर्मिष्ठ व्यक्ति काया छोड़ने पर (अर्थात, मरणोपरांत) ससीम (लोकों) को नहीं प्राप्त होता (अर्थात,

अनिर्वचनीय परिनिर्वाण को प्राप्त कर लेता है, जिससे उसका अनित्य संसार में पुनः आवागमन नहीं होता)।

समाहितो सम्पजानो, सतो बुद्धस्स सावको।
वेदना च पजानाति, वेदनानञ्च सम्भवं॥

यत्थ चेता निरुज्झन्ति, मग्गं च खयगामिनं।
वेदनानं खया भिक्खु, निच्छातो परिनिब्बुतो॥

बुद्ध का श्रावक (साधक) जो समाहित है, सजग है (सच्चाई को) प्रज्ञापूर्वक संपूर्णतया जानने वाला है, वह (शारीरिक) संवेदना को भली प्रकार (प्रज्ञापूर्वक) जानता है - संवेदनाओं की उत्पत्ति को, जहां ये निरुद्ध होती हैं और (संवेदनाओं के) क्षयगामी मार्ग को भी (जानता है)। संवेदनाओं के क्षय से साधक तृष्णा-रहित हो परिनिर्वाण पा लेता है।

(२१) भव-चक्र

भव-बंधन टूट गये

सोज्ज भद्दो अनुत्रासी, पहीनभयभेरवो।
झायति वनमोगय्ह, पुत्तो गोधाय भद्दियो॥

सीलक्खन्धे पतिट्ठाय, सतिं पञ्ञं च भावयं।
पापुणिं अनुपुब्बेन, सब्बसंयोजनक्खयं॥

वही गोधायपुत्र भद्रिय (जो गढ़-महलों में खड्गहस्त अंगरक्षकोंसे घिरे रहने पर भी संत्रस्त और भयभीत रहता था) आज (सही माने में) भद्र हुआ, त्रासरहित, भयरहित हुआ, वन में प्रवेश करध्यान करताहै। शील-सदाचार में पूर्णतया प्रतिष्ठित होकर स्मृति तथा प्रज्ञा की भावना करता हुआ, क्रमशः, मैंने सारे संयोजनों के क्षय को प्राप्त किया, अर्थात मेरे सभी बंधन टूट गये।

मरणे मे भयं नत्थि, निकन्ति नत्थि जीविते।
सन्देहं निक्खिपिस्सामि, सम्पजानो पटिस्सतो॥

न मुझे मरने का भय है, न जीने की कामना। (जब समय आयगा) मैं इस देह को स्मृति और संप्रज्ञा (जागरूकता और तटस्थता) के साथ त्याग दूंगा।

रूपसोखुम्मतं ञत्वा, वेदनानं च सम्भवं।
सञ्ञा यतो समुदेति, अत्थं गच्छति यत्थ च।
सङ्खारे परतो ञत्वा, दुक्खतो नो च अत्ततो॥

स वे सम्मदसो भिक्खू, सन्तो सन्तिपदे रतो।
धारेति अन्तिमं देहं, जेत्वा मारं सवाहिनिं॥

रूपकलापों की सूक्ष्मता को जानकर, संवेदनाओं की उत्पत्ति को जानकर, संज्ञा की जहां उत्पत्ति होती है और जहां उसका निरोध होता है

उसको जानकर, सभी संस्कारों से तादात्म्य दूरकर, उन्हें दु:ख-स्वरूप समझकर और उनके प्रति अनात्मभाव रखकर जो शांत सम्यक दर्शी साधक भिक्षु (परम) शांतिपद निर्वाण रत होता है वह सेना-सहित मार को जीत कर अंतिम देहधारी बन जाता है। (उसके लिये अगला जन्म नहीं होता।)

खन्धा दिट्ठा यथाभूतं, भवा सब्बे पदालिता।
विक्खीणो जातिसंसारो, नत्थि दानि पुनब्भवो॥

शरीर और चित्त स्कंधों की यथाभूत सच्चाइयों का सम्यक दर्शन कर लिया। मेरे सारे भव विदीर्ण हो गये। बार बार का जन्म-संसरण क्षय हो गया। अब मेरे लिये पुनर्भव नहीं है।

नाभिनन्दामि मरणं, नाभिनन्दामि जीवितं।
कालञ्च पटिकङ्खामि, सम्पजानो पतिस्सतो॥

न मृत्यु का अभिनंदन करता हूं, न जीने का ही। संप्रज्ञ और सजग रह कर अपने समय की प्रतीक्षा करता हूं।

अप्पमादरतो भिक्खु, पमादे भयदस्सि वा।
सयोजनं अणुं थूलं, डहं अग्गीव गच्छति॥

जो साधक अप्रमाद में रत रहता है, या प्रमाद से भय खाता है, वह अपने छोटे-बड़े सभी (कर्म-संस्कारों के) बंधनों को आग की भांति जलाते हुए चलता है।

परिचिण्णो मया सत्था, कतं बुद्धस्स सासनं।
ओहितो गरुको भारो, भवनेत्ति समूहता॥

मैंने अपने शास्ता को, धर्मगुरु को, पहचान लिया है। मैंने बुद्ध का शासन पूरा कर लिया है, उनकी शिक्षा का पूरा पालन कर लिया है। मैंने अपना भारी बोझ उतार लिया है। भवनेत्री (भवतृष्णा) को दूर कर दिया है।

भग्गरागो भग्गदोसो, भग्गमोहो अनासवो।
भग्गास्स पापका धम्मा, भगवा तेन वुच्चती॥

राग, द्वेष और मोह को भग्न कर दिया है जिन्होंने, जो आश्रवरहित हैं, जिनके सभी पाप-स्वभाव भग्न हो गये हैं, इस कारण वे भगवान कहलाते हैं।

अथ निब्बिन्दहं रूपे, निब्बिन्दञ्च विरज्जहं।
मा पुन जातिसंसारं, सन्धावेय्यं पुनप्पुनं॥

इस शारीरिक रूप-सौंदर्य के प्रति मेरे मन में निर्वेद जागा। मैं इसके प्रति मोहमुक्त और विरक्त हो गयी। (इस अवस्था में विपश्यना करती हुई मैं उस अवस्था पर पहुँची जहां नितांत विमुक्त हो गयी।) अब मृत्यु और जन्म के चक्कर में बार-बार भटकना न होगा। संसार में फिर मेरा जन्म नहीं होगा।

संसार में आवागमन क्यों?

चतुन्नं, भिक्खवे, अरियसच्चानं अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममञ्चेव तुम्हाकञ्च।

भिक्षुओ, चार आर्य-सत्यों को भली प्रकार न जान लेने के कारण और गहराई से बींध कर अपने अनुभवों के स्तर पर उनका स्वयं साक्षात्कार न कर लेने के कारण ही इतने लंबे समय से मेरा और तुम्हारा इस संसारचक्र में बार-बार आना-जाना और भागना-दौड़ना होता रहा है।

रूपं दिस्वा सति मुट्ठा, पियं निमित्तं मनसिकरोतो।
सारत्तचित्तो वेदेति, तञ्च अज्झोस तिट्ठति।
तस्स वड्ढन्ति आसवा, भवमूलोपगामिनो॥

सुंदर रूप देख कर इसी प्रिय आलंबन का चिंतन करने लगता है तो स्मृति-विमूढ़ हो जाता है (होश खो बैठता है)। कामराग से रंजित हुआ ऐसा चित्त, शरीर पर प्रकट होने वाली संवेदनाओं के आस्वादन में डूबा रहता है।

उस व्यक्ति के आश्रव बढ़ते हैं जो कि उसके भवचक्र के आवागमन के मूल कारण बनते हैं।

व्यर्थ ही रोय

न हेतदत्थाय मतस्स होति, न जीवितत्थं परपोरिसानं।
मतं हि रुण्णं न यसं न लोक्यं, न वण्णितं समणब्राह्मणेहि॥

रोने से न मृत व्यक्ति का भला होता है, न जीवितों का। दोनों की ही हानि होती है। मृतक के लिये रोने से न यश बढ़ता है और न चित्तविशुद्धि होती है। इसीलिए श्रमण और ब्राह्मण इसे अच्छा नहीं कहते (इसकी प्रशंसा नहीं करते)।

भवचक्र से मुक्ति

सो वेदना परिञ्ञाय, दिट्ठे धम्मे अनासवो।
कायस्स भेदा धम्मट्ठो, सङ्ख्यं नोपेति वेदगू॥

वह धर्मिष्ठ, वेदगू व्यक्ति वेदनाओं का परिपूर्ण रूप से ज्ञान प्राप्त कर (परम सत्य का साक्षात्कार कर), अनाश्रव हो, (जब) मृत्यु को प्राप्त होता है (तब) इस नश्वर जगत को पुनः प्राप्त नहीं होता।

सुलगता संसार

सब्बो आदीपितो लोको, सब्बो लोको पधूपितो।
सब्बो पज्जलितो लोको, सब्बो लोको पकम्पितो॥

सारा लोक सुलग रहा है, सारा लोक धधक रहा है, सारा लोक जल रहा है, सारा लोक प्रकंपित हो रहा है।

(२२) कल्याणमित्र – सत्संग

कल्याणमित्र कौन?

पियो गरु भावनीयो, वत्ता च वचनक्खमो।
गम्भीरञ्च कथं कत्ता, नो चट्ठाने नियोजको॥

जो कल्याणमित्र है, वह प्रिय, गौरवशाली, आदरणीय, सुवक्ता और मृदुभाषी होता है; गंभीर बातों को बताने वाला और बुरे कामों में नहीं लगाने वाला होता है।

कल्याणमित्र का संयोग

सूरियस्स, भिक्खवे, उदयतो एतं पुब्बङ्गमं पुब्बनिमित्तं, यदिदं - अरुणुग्गं; एवमेव खो, भिक्खवे, भिक्खुनो अरियस्स अट्ठङ्गिकस्स मग्गस्स उप्पादाय एतं पुब्बङ्गमं एतं पुब्बनिमित्तं यदिदं – कल्याणमित्तता।

जैसे भिक्षुओ! आकाश में ललाई का छा जाना सूर्योदय का पूर्वांग है, पूर्व-लक्षण है, वैसे ही साधकों के लिये कल्याणमित्र का संयोग आर्य अष्टांगिक मार्ग की उपलब्धि का पूर्वांग है, पूर्व-लक्षण है।

सत्संग की कामना

इमिना पुञ्ञकम्मेन, मा मे बालसमागमो।
सन्तं समागमो होतु, याव निब्बानपत्तिया॥

इस पुण्यकर्म के प्रभाव से मेरा कभी भी मूर्खों से पाला न पड़े। जब तक निर्वाण न प्राप्त कर लूं, सदा सत्पुरुषों से ही मिलन हो।

सत्संगति

साधु सुविहितान दस्सनं, कङ्खा छिज्जति बुद्धि वड्ढति।
बालम्पि करोन्ति पण्डितं, तस्मा साधु सतं समागमो॥

सत्पुरुषों का दर्शन भला है। (इससे) शंकाएं दूर होती हैं। बुद्धि बढ़ती है। वे मूर्ख को भी समझदार बना देते हैं। अतः सत्पुरुषों की संगत साधु (अच्छी) है।

यं त्वेव जञ्ञा सदिसो ममन्ति, सीलेन पञ्ञाय सुतेन चापि।
तेनेव मेत्तिं कयिराथ सद्धिं, सुखो हवे सप्पुरिसेन सङ्गमोति॥

जिसे शील, प्रज्ञा और श्रुत में अपने सदृश जाने, उसी के साथ मैत्री करे। सत्पुरुष का सत्संग सुखदायी होता है।

न भजे पापके मित्ते, न भजे पुरिसाधमे।
भजेथ मित्ते कल्याणे, भजेथ पुरिसुत्तमे॥

न पापी मित्रों की संगत करे, न अधम पुरुषों की। संगति करे कल्याणमित्रों की, उत्तम पुरुषों की।

(२३) धर्म

धर्म करे कल्याण

सब्बीतियो विवज्जन्तु, सोको रोगो विनस्सतु।
मा ते भवत्वन्तरायो, सुखी दीघायुको भव॥

(तुम्हारे) सारे कष्ट दूर हों, रोग-शोक विनष्ट हों। तुम्हें कोई अंतराय (विघ्न) न रहे! (तुम) सुखी रहो (और) दीर्घायु प्राप्त करो!!

इच्छितं पत्थितं तुय्हं, खिप्पमेव समिज्झतु।
सब्बे पूरेन्तु सङ्कप्पा, चन्दो पन्नरसो यथा॥

(सभी) इच्छित और प्रार्थित (वस्तुएं) तुम्हें शीघ्र प्राप्त हों! तुम्हारे सभी संकल्प पूनम के चांद की तरह परिपूर्ण हों।

आयु आरोग्य-सम्पत्ति, सग्गसम्पत्तिमेव च।
ततो निब्बानसम्पत्ति, इमिना ते समिज्झतु॥

(मेरे इस पुण्य-कर्म के प्रभाव से) तुम्हें दीर्घायु-संपत्ति प्राप्त हो, आरोग्य-संपत्ति प्राप्त हो, (समय आने पर) स्वर्ग-संपत्ति प्राप्त हो, और तदनंतर निर्वाण-संपत्ति प्राप्त हो!

सब्बे सत्ता सुखी होन्तु, सब्बे होन्तु च खेमिनो।
सब्बे भद्राणि पस्सन्तु, मा कञ्चि दुक्खमागमा॥

सारे प्राणी सुखी हों और कुशलक्षेम से युक्त हों। सब मंगलदर्शी हों। किसी को किसी प्रकार का दुःख न हो।

सद्धिं होन्तु सुखी सब्बे, परिवारेहि अत्तनो।
अनीघा सुमना होन्तु, सह सब्बेहि ञातिभि॥

अपने (-अपने) परिवार (-जन) और सब जातिभाइयों सहित सभी लोग सुखी हों! (वे) शांति और सौमनस्य लाभ करें!!

पापुणन्तु विसुद्धाय, सुखाय पटिपत्तिया।
असोकं अनुपायासं, निब्बानं सुखमुत्तमं॥

विशुद्धि के लिए, सुख के लिए, सदाचरण के लिए शोक रहित, शांत, उत्तम सुख निर्वाण को प्राप्त करें।

सुत्तन्ते रक्खिते सन्ते, पटिपत्ति होति रक्खिता।
पटिपत्तियं ठितो धीरो, योगक्खेमा न धंसति॥

धर्मसूत्र सुरक्षित रहने पर प्रतिपत्ति (याने, साधना) का आचरण सुरक्षित रहता है। सूत्रानुसार आचरण करने वाला धीर व्यक्ति योगक्षेम (निर्वाण) से वंचित नहीं होता है।

चिरं तिट्ठतु सद्धम्मो, धम्मे होन्तु सगारवो।
सब्बेपि सत्ता कालेन, सम्मा देवो पवस्सतु॥

सद्धर्म चिरस्थायी हो! (सभी लोग) धर्म के प्रति गौरवयुक्त हों! सम्यक देव समय पर बरसें!

सब्बदानं धम्मदानं जिनाति, सब्बरसं धम्मरसो जिनाति।
सब्बरतिं धम्मरति जिनाति, तण्हक्खयो सब्बदुक्खं जिनाति॥

धर्म का दान सब दानों को जीत लेता है (सब दानों में श्रेष्ठ है।) धर्म का रस सब रसों को जीत लेता है (सब रसों में श्रेष्ठ है।) धर्म में रमण करना सभी रमण-सुखों को जीत लेता है (सब रतियों में श्रेष्ठ है।) तृष्णा का क्षय सब दुःखों को जीत लेता है (अर्थात, सबसे श्रेष्ठ है)।

धर्मचारी सुख का अधिकारी

धम्मं चरे सुचरितं, न नं दुच्चरितं चरे।
धम्मचारी सुखं सेति, अस्मिं लोके परम्हि च॥

सुचरित धर्म का आचरण करे। दुराचरण से बचे। धर्मचारी इस लोक और परलोक (दोनों जगह) सुखपूर्वक विहार करता है।

छन्दा दोसा भया मोहा, यो धम्मं नातिवत्तति।
आपूरति यसो तस्स, सुक्कपक्खेव चन्दिमाति॥

जो व्यक्ति राग, द्वेष, भय और मोह से धर्म का अतिक्रमण नहीं करता, उसका यश शुक्ल पक्ष के चंद्रमा की भांति बढ़ता है।

धम्मपीति सुखं सेति, विप्पसन्नेन चेतसा।
अरियप्पवेदिते धम्मे, सदा रमति पण्डितो॥

बुद्ध के उपदेशित धर्म में सदा रमण करता है पंडित। (नवविध लोकोत्तर) धर्म (रस) का पान करनेवाला विशुद्धचित्त हो सुखपूर्वक विहार करता है।

धर्मशरण ही उत्तम शरण

नत्थि मे सरणं अञ्ञं, धम्मो मे सरणं वरं।
एतेन सच्चवज्जेन, भवतु ते जयमङ्गलं॥

"मेरी अन्य कोई शरण नहीं, केवल (लोकोत्तर) धर्म ही मेरी उत्तम शरण है" - इस सत्य वचन (के प्रताप) से तेरा जय-मंगल हो!

अट्ठङ्गिको अरियपथो जनानं, मोक्खप्पवेसो उजुकोव मग्गो।
धम्मो अयं सन्तिकरो पणीतो, निय्यानिको तं पणमामि धम्मं॥

यह जो आर्य-जनों के उपयुक्त अष्टांगिक मार्ग है, यह जो मोक्ष-प्राप्ति के लिये सीधा सरल मार्ग है, यह जो शांतिदायक उत्तम धर्म है और यह जो निर्वाण की ओर ले जाने वाला है - मैं ऐसे धर्म को प्रणाम करता हूं।

धम्मानुधम्मपटिपत्तिया बुद्धं पूजेमि।

धम्मानुधम्मपटिपत्तिया धम्मं पूजेमि।

धम्मानुधम्मपटिपत्तिया सङ्घं पूजेमि।

धर्मानुधर्म को आचरण में उतार कर मैं बुद्ध की पूजा करता हूं।

धर्मानुधर्म को आचरण में उतार कर मैं धर्म की पूजा करता हूं।

धर्मानुधर्म को आचरण में उतार कर मैं संघ की पूजा करता हूं।

सुञ्ञागारं पविट्ठस्स, सन्तचित्तस्स भिक्खुनो।
अमानुसी रति होति, सम्मा धम्मं विपस्सतो॥

किसी शून्यागार में प्रवेश करके कोई शांत-चित्त साधक जब सम्यक रूप से धर्मानुपश्यना करता है तब उसे लोकोत्तर सुख प्राप्त होता है (जो कि सामान्य मानवीय लोकीय सुखों से परे होता है)।

यो च बुद्धञ्च धम्मञ्च, सङ्घञ्च सरणं गतो।
चत्तारि अरियसच्चानि, सम्मप्पञ्ञाय पस्सति॥

दुक्खं दुक्खसमुप्पादं, दुक्खस्स च अतिक्कमं।
अरियं चट्ठङ्गिकं मग्गं, दुक्खूपसमगामिनं॥

एतं खो सरणं खेमं, एतं सरणमुत्तमं।
एतं सरणमागम्म, सब्बदुक्खा पमुच्चति॥

जो बुद्ध, धर्म और संघ की शरण गया है, जिसने चार आर्यसत्यों - दुःख, दुःख की उत्पत्ति, दुःख से मुक्ति और मुक्तिगामी आर्य अष्टांगिक मार्ग - को सम्यक प्रज्ञा से देख लिया है, और जो यह जानता है कि यही मंगलदायक शरण है, यही उत्तम शरण है, वह इसी शरण को प्राप्त कर सब दुःखों से मुक्त हो जाता है।

धम्मारामो धम्मरतो, धम्मं अनुविचिन्तयं।
धम्मं अनुस्सरं भिक्खु, सद्धम्मा न परिहायति॥

धर्म में रमण करने वाला, धर्म में रत, धर्म का चिंतन करते, धर्म का स्मरण करते भिक्षु (साधक) सद्धर्म से च्युत नहीं होता।

सुखो बुद्धानमुप्पादो, सुखा सद्धम्मदेसना।
सुखा सङ्घस्स सामग्गी, समग्गानं तपो सुखो॥

सुखदायी है बुद्धों का उत्पन्न होना, सुखदायी है सद्धर्म का उपदेश। सुखदायी है संघ की एकता, सुखदायी है एक-साथ तपना।

धर्मरत्न अनमोल

स्वागतं न दुरागतं, नयिदं दुमन्तितं मम।
संविभत्तेसु धम्मेसु, यं सेट्ठं तदुपागमिं॥

मेरा यहां आना अच्छा ही हुआ, बुरा नहीं हुआ। मुझे जो परामर्श मिला वह कल्याणकारी ही सिद्ध हुआ। संविभाजित धर्म में यह जो श्रेष्ठ है उसे मैंने प्राप्त किया।

वनप्पगुम्बे यथा फुस्सितग्गे, गिम्हानमासे पठमस्मिं गिम्हे।
तथूपमं धम्मवरं अदेसयि, निब्बानगामिं परमं हिताय॥

ग्रीष्म ऋतु के प्रारंभिक मास में जिस प्रकार सघन वन प्रफुल्लित वृक्षशिखरों से शोभायमान होता है, उसी प्रकार भगवान बुद्ध ने ऐसे परम हितकारी श्रेष्ठ धर्म का उपदेश दिया जो निर्वाण की ओर ले जाने वाला है।

यं किञ्चि रतनं लोके, विज्जति विविधा पुथु।
रतनं धम्मसमं नत्थि, तस्मा सोत्थि भवन्तु ते॥

लोक में जो विविध प्रकार के रत्न हैं, उनमें से कोई भी धर्म-रत्न जैसा नहीं है। इस सत्य से तुम्हारी स्वस्ति हो!

विपश्यना – सनातन धर्म

चिरं तिट्ठतु लोकस्मिं, सम्मासम्बुद्धसासनं।
दस्सेन्तं सोतवन्तुनं, मग्गं सत्तविसुद्धिया॥

सात प्रकार की विशुद्धियों के लिये, श्रोत्रवंतों (कान वालों) को भगवान सम्यक संबुद्ध ने जो उपदेश दिया वह लोक में चिरकाल तक स्थित रहे।

जीरन्ति वे राजरथा सुचित्ता, अथो सरीरम्पि जरं उपेति।
सतो च धम्मं न जरं उपेति, सन्तो हवे सब्भि पवेदयन्ति॥

रंग-बिरंगे सुचित्रित राजरथ जीर्ण हो जाते हैं और यह शरीर भी जीर्णता को प्राप्त हो जाता है। (परंतु) संतों (बुद्धों) का धर्म जीर्ण नहीं होता (तरोताजा बना रहता है)। संतजन (बुद्ध) संतों से ऐसा (ही) कहते हैं।

यथाभूत ज्ञानदर्शन

अतीतं नान्वागमेय्य, नप्पटिकङ्खे अनागतं।
यदतीतं पहीनं तं, अप्पत्तञ्च अनागतं॥

पच्चुप्पन्नञ्च यो धम्मं, तत्थ तत्थ विपस्सति।
असंहीरं असङ्कुप्पं, तं विद्वा मनुब्रूहये॥

भूतकाल की याद कर व्यग्र-व्याकुल न हो, भविष्य की कपोल-कल्पना के प्रति कामनाग्रस्त न हो। भूतकाल तो बीत चुका, भविष्य अभी आया नहीं। इस क्षण जो जो जहां-जहां उत्पन्न हुआ है, उस धर्म को, उस स्थिति को, समझदार आदमी वहां-वहां देखे। परंतु न राग-रंजित होकर उससे चिपके और न ही द्वेष-दूषित होकर उससे कुपित हो। इस प्रकार अनासक्त हो, साक्षी स्वभाव वाली विपश्यना का अभ्यास करे, उसका विकास करे।

कम्मुना वत्तति लोको, कम्मुना वत्तति पजा।
कम्मनिबन्धना सत्ता, रथस्साणीव यायतो।
एवमेतं यथाभूतं, कम्मं पस्सन्ति पण्डिता।
पटिच्चसमुप्पाददस्सा, कम्मविपाककोविदा॥

संसार कर्म के आधार पर चलता है। कर्म के आधार पर प्रजा चलती है। चलते हुए रथ का पहिया जैसे धुरी से बँधा रहता है, वैसे ही प्राणी भी अपने कर्मों से बँधे हुए रहते हैं। इस प्रकार प्रतीत्यसमुत्पाददर्शी तथा कर्मविपाककुशल ज्ञानी विपश्यी कर्म-संस्कार (के खेल) को यथाभूत देखते हैं, याने जैसे-जैसे होता है वैसे-वैसे देखते हैं।

जिघच्छापरमा रोगा, सङ्खारपरमा दुखा।
एतं ञत्वा यथाभूतं, निब्बानं परमं सुखं॥

भूख सबसे बड़ा रोग है (और उसके कारण) जो संस्कार बनते हैं वे सबसे बड़े दुःख हैं। (तृष्णा और उससे बनते संस्कारों को अपने भीतर विपश्यना साधना द्वारा) यथाभूत जानकर जो निर्वाण (प्राप्त होता) है, वह सबसे बड़ा सुख है।

धर्मचारी ही सर्वप्रिय

सीलदस्सनसम्पन्नं, धम्मट्ठं सच्चवादिनं।
अत्तनो कम्मं कुब्बानं, तं जनो कुरुते पियं॥

जो शीलसंपन्न, विपश्यनासंपन्न, धर्मनिष्ठ, सत्यवादी, कर्तव्यपरायण है, उसे लोग प्यार करते हैं।

धर्म की निरपेक्षता

"अन्तेवासिकम्यता नो समनो गोतमो एवमाहा" ति। न खो पनेतं, निग्रोध, एवं दट्ठब्बं। यो एव वो आचरियो, सो एव वो आचरियो होतु।

(यदि तुम्हारे मन में ऐसा विचार हो कि) श्रमण गौतम अपने शिष्यों की संख्या बढ़ाने के लिये ऐसा कहते हैं, तो ऐसा नहीं समझना चाहिए। निग्रोध! जो तुम्हारे आचार्य हैं, वे ही तुम्हारे आचार्य रहें।

(२४) दान की महिमा

सर्वोत्तम दान

अन्नदो बलदो होति, वत्थदो होति वण्णदो।
यानदो सुखदो होति, दीपदो होति चक्खुदो॥

सो च सब्बददो होति, यो ददाति उपस्सयं।
अमतं ददो च सो होति, यो धम्ममनुसासाति॥

जो अन्न का दान देता है, वह बल का दान देता है। जो वस्त्र का दान देता है, वह वर्ण (रूप) का दान देता है। जो वाहन का दान देता है, वह सुख का दान देता है। जो प्रदीप का दान देता है, वह चक्षु का दान देता है। जो उपाश्रय (निवास-स्थान) का दान देता है, वह सब कुछ दान देता है। परंतु जो धर्म में अनुशासित करता है (याने, धर्म का दान देता है), वह वस्तुतः अमृत का दान देता है (निर्वाण का दान देता है)।

यो धम्मलद्धस्स ददाति दानं, उट्ठानवीरियाधिगतस्स जन्तु।
अतिकम्म सो वेतरणिं यमस्स, दिब्बानि ठानानि उपेति मच्चो॥

जो (दानी) धर्मलाभी, उत्थान-वीर्ययुक्त [याने, पुरुषार्थ-पराक्रम द्वारा मुक्तिमार्ग (साधना-पथ) पर आरूढ़ व्यक्ति] को दान देता है, वह यम की वैतरणी (नदी) को पार कर दिव्य स्थानों को प्राप्त होता है।

(२५) बिखरे मोती

रमणीय भूमि

गामे वा यदि वारञ्ञे, निन्ने वा यदि वा थले।
यत्थ अरहन्तो विहरन्ति, तं भूमिरामणेय्यकं॥

गांव हो या जंगल, भूमि नीची हो या (ऊंची), जहां (कहीं) अरहंत विहार करते हैं, वह भूमि रमणीय होती है।

प्रज्ञा का प्रकाश

यथा सङ्कारठानस्मिं, उज्झितस्मिं महापथे।
पदुमं तत्थ जायेथ, सुचिगन्धं मनोरमं॥

एवं सङ्कारभूतेसु, अन्धभूते पुथुज्जने।
अतिरोचति पञ्ञाय, सम्मासम्बुद्धसावको॥

जिस प्रकार महापथ पर फेंके गये कचरे के ढेर में पवित्र गंध वाला मनोरम पद्म उत्पन्न हो जाता है, उसी प्रकार कचरे के समान अंधे पृथग्जनों के बीच सम्यक संबुद्ध का श्रावक भी अपनी प्रज्ञा से अंधे पृथग्जनों के बीच अत्यंत शोभायमान होता है।

अप्रमाद का सुपरिणाम

यो च पुब्बे पमज्जित्वा, पच्छा सो नप्पमज्जति।
सोमं लोकं पभासेति, अब्भा मुत्तोव चन्दिमा॥

जो पहले प्रमाद करके (भी) पीछे प्रमाद नहीं करता, वह मेघमुक्त चंद्रमा की भांति इस लोक को प्रकाशित करता है।

दूध का दूध पानी का पानी

सारञ्च सारतो ञत्वा, असारञ्च असारतो।
ते सारं अधिगच्छन्ति, सम्मासङ्कप्पगोचरा॥

सार को सार और निःसार को निःसार जान कर सम्यक चिंतन करने वाले व्यक्ति सार को प्राप्त कर लेते हैं।

असारे सारमतिनो, सारे चासारदस्सिनो।
ते सारं नाधिगच्छन्ति, मिच्छासङ्कप्पगोचरा॥

जो निःसार को सार और सार को निःसार समझते हैं, ऐसे गलत चिंतन में लगे हुए व्यक्तियों को सार प्राप्त नहीं होता।

गाथानुक्र मणिक ा